वाणी-विनोद पुस्तक-माला—संख्या २

भूली बात

विनोदशंकर व्यास

प्रकाशक

पुस्तक-मन्दिर, काशी

मूल्य एक रुपया

प्रथम
संस्करण

Price Rs 1/:

दीपावली
सं० १९८६

मुद्रक
श्रीप्रवासीलाल वर्मा, मालवीय
सरस्वती-प्रेस, काशी

सूची

भूली बात ... ५
अभिनेता ... १५
अपराध ... ३१
अन्धकार ... ४९
विद्रोही ... ५९
बदला ... ७१
चिड़ियावाला ... ८५
विधाता ... ९३
छलिया ... १०५

भूली बात

जवानी के सरस दिनों में, किसी के ऊपर अपना सर्वस्व निछावर कर देने की, अथवा उसपर मर मिटने की कल्पना कितनी प्यारी और सुखद होती है ! दुनिया में लोग इसे पागलपन समझते हैं ; लेकिन कौन ऐसा है, जिसने अपने जीवन में एक बार इसका अनुभव न किया हो ?

एक वह दिन था, जब कमल ने कहा था — तारा ! इस जीवन में क्या तुम्हारे प्यार का मूल्य चुका सकूँगा ? संसार हँसता है, हँसने दो ; समाज

गालियाँ देता है, देने दो ; तुम मेरी हो, मैं तुम्हारा हूँ ! यह कठोर सत्य है। विश्व की समूची शक्ति इस सम्बन्ध को न छुड़ा सकेगी।

यौवन की अतृप्त प्यासी तारा ने मुसकिराकर उत्तर दिया था—मुझे तुम्हारा विश्वास है।

❀ ❀ ❀

दिन बीतने लगे।

बड़ा सुख था। दोनों एक दूसरे की तरफ देखते ही रह जाते, एक थाली में बैठकर भोजन करते ; किसी तरह का भेद-भाव न था।

उस दिन संध्या-समय, कमल तारा को साथ लेकर मन बहलाने के लिए निकला था। जन-पथ के कोलाहल से भय था। वह निर्जन मार्ग की ओर बढ़ा। बहुत दूर निकल गया था।

एक ऊँचे करारे पर चढ़ते हुए कमल ने कहा—तारा ! यहाँ से गिरने पर हड्डियों का पता भी नहीं चल सकता !

तारा ने भयभीत होकर कहा—बड़ा विकट स्थान है !

प्रेम की क्षणिक भावुकता में कमल ने कहा—यदि हम दोनों आलिङ्गन करते हुए, कूद पड़ें तो...

तारा चुप थी, जैसे किसी विचार में पड़ गई हो।

"बोलो, तुम प्रस्तुत हो ?"

"तुम्हारे साथ मरने में भी मुझे सुख है। क्या मेरी परीक्षा लेना चाहते हो ?"

"नहीं, तारा ! मुझे स्वयं अपने मन की दृढ़ता पर विश्वास नहीं है।"

कमल तारा की ओर देखने लगा। क्षण-भर के लिए उस समय मृत्यु की कल्पना भी बड़ी प्यारी लगी।

दोनों घर लौटे।

आकाश के रंगीन चित्रों को बटोरकर सुन्दरी संध्या भी खिसक गई थी।

(२)

वर्ष के बाद वर्ष आए और गए।

परिस्थितियों ने उलझन का जाल बनाया। ऐसा

जाल, जिसमें फँस कर मनुष्य न-जाने कहाँ-से-कहाँ चला जाता है।

सुख, विलास, ऐश्वर्य से भरे संसार को कोई नफरत की नजरों से क्यों देखता है? पागल आँखें, जिन्हें देखने को तरसती रह जाती हैं, —वही आँखें—एक दिन ऐसा आता है, जब पलकें बन्द कर उनसे दूर भागने की चेष्टा करती हैं।

उस मधुर राग से जी भर जाता है, तबीयत ऊब उठती है। जो कुछ भी हो, हम मिलकर भी अपने को दूर रखना चाहते हैं।

विश्व की समूची शक्ति भी जिसे नहीं छुड़ा सकती थी, कमल अपने-आप उसी बन्धन को तोड़ डालता है। तारा की जिन बातों पर वह मुग्ध था, उन्हीं से अब घबड़ा उठा।

कायर आदमी अपने ऊपर जिम्मेदारी का बोझ नहीं उठाना चाहता। वह अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रहता। वह कल्पनाओं का दास है। कमल भी ऐसे ही लोगों में था।

भूली बात

(३)

शराब की बेहोशी से जैसे उठकर कोई रात की बीती बातों को सोचता है, ठीक वही दशा तारा की थी। ओह ! सुख कितना महँगा हो गया था।

उस पवित्र प्रेम के दम भरनेवाले भाव, अब गन्दी नालियों में बहने लगे। काले हृदय में स्मृति की वैसी ही एक-दो रेखाएँ थीं, जैसे परखने में कसौटी पर स्वर्ण की रह जाती हैं।

तारा बैठी सोचा करती है। दीन-दुनिया से वह ठुकराई हुई है। उसका कोई नहीं है। संसार में कौन किसका होता है ? किन्तु तारा को इतनी फ़ुर्सत कहाँ कि वह इसपर विचार कर सके।

उसके प्रेम के आँगन में आग बरस पड़ी। जलन में बड़ी मधुरता है, आह है, बेचैनी है, दर्द है !

अविश्वास की गहरी खाई में तारा को अकेला छोड़कर कमल चला गया।

ऐसा क्यों हुआ ? इसका विस्तृत वर्णन करना व्यर्थ है; क्योंकि तारा-जैसी भटकनेवाली स्त्रियाँ

प्रायः संसार की आँखों के सामने आ जाया करती हैं।

(४)

बहुत समय बीत गया। पता नहीं, कमल अगर जीवित होगा, तो उसकी जंवानी ढल गई होगी।

तब से अब तक कितना परिवर्त्तन हो गया।

तारा, बैठी हुई घाट-किनारे माँग रही थी भीख! और सोच रही थी, अपनी सुनहरी जवानी की बातें। कैसी विडम्बना थी! वे बातें उसे क्यों याद पड़ीं? इसका भी एक कारण था। अपने सुख के दिनों में कमल की गोद में सिर रखकर, ऊपर देखती हुई, कमल की आँखों से आँखें मिलाकर, वह प्रायः गाया करती—

आँखों में समा जाना,
पलकों में रहा करना।
दरिया भी इसी में है,
मौजो में बहा करना।

आज पेट के वास्ते, कुछ दानों को जुटाने के लिए वही गीत, घाट पर बैठी, वह गा रही थी।

भूली बात

गाते-गाते, रुककर वह सोचने लगी—अपने विलास के स्वप्न ! सामने उसके कपड़े के टुकड़े पर कुछ चावल और पैसे पड़े थे।

माला-फूल से सजी हुई, चाँदी की डोलची हाथ में लिए हुए, एक अधेड़ भक्त पुरुष, गंगा-स्नान करके मन्दिरों में दर्शन करने जा रहा था।

ठिठककर उस आधे गीत को अपने मन में सोचने लगा।

भगवान् की माया-ममता का उस गाने में कोई जिक्र न था। फिर भी भक्तराज की आँखें न-जाने क्यों भर आईं।

चुपचाप एक चवन्नी—एक गोल चाँदी का टुकड़ा—उसी फटे कपड़े पर फेंकते हुए, वह बहुत जल्दी से आगे बढ़ गया ; किन्तु, बढ़ते ही राह में खड़ी हुई एक सीधी गाय से टकराते-टकराते बच गया। शायद कोई 'भूली बात' सोचने लगा था।

वह लौट आया। सामने से देखने का साहस नहीं हुआ—कतराकर ; बगल में खड़ा होकर तारा

को पहचानने की कोशिश करने लगा। और तारा अभी चवन्नी देनेवाले की दयालुता पर विचार कर रही थी। उसने देनेवाले की पीठ पर का सिल्क का चदरा तो देख लिया था, चेहरा नहीं देखा था। वह घूमकर देखने लगी।

वह कहना ही चाहती थी कि 'भगवान तुम्हारा भला करें'; किन्तु उसे भी कोई भूली बात याद आ गई। उसने आसीस न दिया! न दिया!!

अभिनेता

(१)

प्रेम की लहरें आलिंगन कर रही थीं! वह अपनी हँसी में संसार का एक सुनहला परदा देखता था। जीवन का अल्हड़पन सुखी जीवन की आशाओं का रंग-बिरंगा जाल बना रहा था। हृदय की चुहल परिहास कर रही थी। उस हँसी में साम्राज्य-विजय का अभिमान था, और उस रोने में—एक अबोध शिशु की सरल सिसकियाँ खेल रही थीं।

उसे जीवन की बड़ी ममता थी। ऐश्वर्य की कामना वासना के सिंधु में उन भीषण लहरों के साथ छेड़खानियाँ करने के लिए प्रस्तुत थी। उसने समझा यही समय है। देखा, सुंदरी पुष्पों के एक हार गूँथने में व्यस्त है। गर्व की मस्तानी हँसी में वह खिलखिला पड़ा। उसे अपनी सफलता पर आश्चर्य था।

उसने कहा—"क्यों, जीवन का यही अमूल्य समय है न ?"

सुंदरी अपलक नयनों से देखने लगी।

"बोलो ? चुप क्यों हो ?"—युवक ने पूछा।

"सोचती हूँ, इतना सुख बटोरकर हम लोग इस संसार में सुखी रह सकेंगे ?"

"इसमें तुम्हें संदेह क्यों हो रहा है ?"

"संसार की ओर देखकर।"

"संसार से संबंध क्या ?"

"जैसा कहो।"

"मैं तो अपना एक छोटा-सा संसार तुम्हें ही समझता हूँ।"

Mohan Lal Jishu

"और मैं! तुम्हें अपने जीवन के अंतर-तम प्रदेश के अंधकार की सीमा के पास प्रकाश की एक उज्ज्वल रेखा समझती हूँ।"

"छाया! मेरे जीवन का सुख तुम्हारी चुटकियों के ताल पर उस अज्ञात संगीत का मधुर स्वर सुन रहा था।"

संसार बड़ा मनोरम था।

(२)

रात और दिन केवल एक अँगड़ाई में समाप्त हो जाता था। प्रकृति के सुंदर दृश्यों के साथ लालसाएँ चुपचाप कानों में कुछ कहकर आकाश में स्वप्नों के समान अपना अनुपम चित्र दिखलाती थीं।

जीवन की अभिनय-शाला का वह प्रथम दृश्य था। निर्भीकता से संसार के सामने उसने आँखें उठाईं।

लोगों ने तीखे स्वर में कहा—"भूखों मरोगे, रोओगे।"

भूली बात

उसे जीवन की बड़ी ममता थी। ऐश्वर्य की कामना वासना के सिंधु में उन भीषण लहरों के साथ छेड़खानियाँ करने के लिए प्रस्तुत थी। उसने समझा यही समय है। देखा, सुंदरी पुष्पों के एक हार गूँथने में व्यस्त है। गर्व की मस्तानी हँसी में वह खिलखिला पड़ा। उसे अपनी सफलता पर आश्चर्य था।

उसने कहा—"क्यों, जीवन का यही अमूल्य समय है न?"

सुंदरी अपलक नयनों से देखने लगी।

"बोलो? चुप क्यों हो?"—युवक ने पूछा।

"सोचती हूँ, इतना सुख बटोरकर हम लोग इस संसार में सुखी रह सकेंगे?"

"इसमें तुम्हें संदेह क्यों हो रहा है?"

"संसार की ओर देखकर।"

"संसार से संबंध क्या?"

"जैसा कहो।"

"मैं तो अपना एक छोटा-सा संसार तुम्हें ही समझता हूँ।"

Mohan Lal Jibu

"और मैं! तुम्हें अपने जीवन के अंतर-तम प्रदेश के अंधकार की सीमा के पास प्रकाश की एक उज्ज्वल रेखा समझती हूँ।"

"छाया! मेरे जीवन का सुख तुम्हारी चुटकियों के ताल पर उस अज्ञात संगीत का मधुर स्वर सुन रहा था।"

संसार बड़ा मनोरम था।

(२)

रात और दिन केवल एक अँगड़ाई में समाप्त हो जाता था। प्रकृति के सुंदर दृश्यों के साथ लालसाएँ चुपचाप कानों में कुछ कहकर आकाश में स्वप्नों के समान अपना अनुपम चित्र दिखलाती थीं।

जीवन की अभिनय-शाला का वह प्रथम दृश्य था। निर्भीकता से संसार के सामने उसने आँखें उठाईं।

लोगों ने तीखे स्वर में कहा—"भूखों मरोगे, रोओगे।"

उसने बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया—"कोई चिंता नहीं।" साहस सहचर बन गया था।

रण-क्षेत्र में मशीन-गन की तरह संसार की उँगलियाँ उठग ई थीं। समाज कौतूहल से चौकन्ना होकर देखने लगा।

(३)

"छाया ! वह दिन याद है ?"

"कौन-सा ?"

"जिस दिन तुम और हम परिचित हुए थे।"

"क्या ऐसी घटना भूली जा सकती है ?"

"उस समय प्रसन्नता विना पुचकारे दौड़ी चली आ रही थी। अब समझता हूँ, सचमुच, वे दिन बड़े सुखद थे, जब तुम्हारे नाम का उन्माद था ! गंगा के उस पार, बालू की रेती पर, तुम्हारा नाम लिखकर मिटा देता था, जिसमें उसपर किसी का पद-चिह्न न पड़ जाय।"

"और मैं ! अधखुली आँखों से चंद्रमा में तुम्हारा चित्र देखकर अपने को भूल जाया करती थी।"

"प्रिये ! इस जीवन में स्वार्थी संसार से निराश होकर केवल तुम्हारी ही चाह थी। आह ! संसार कितना निर्दय है।"

"संसार क्या है ? हम-तुम यहाँ क्यों आए ? एक रहस्य की बात है।"

"संसार एक अथाह सागर है, तुम और हम उसकी मदमाती लहरें हैं। उसी में से ये लहरें आती हैं, और अंत में एक दिन उसी में उछलती-कूदती विलीन हो जायँगी। मैं इससे अधिक नहीं समझता।"

"और, मैं समझती हूँ, संसार एक रंग-मंच है। हम और तुम उसके अभिनेता हैं। अपना खेल दिखलाकर हम लोग पर्दे में छिप जाते हैं।"

युवक किसी भाव में लीन होकर आकाश की ओर देखने लगा।

(४)

कई वर्ष बीत गए।

प्रति-दिन परिवर्त्तन कुछ भुनभुनाकर चला जाता।

छाया जैसे अपने खेल से स्वयं ही ऊब गई थी।

भूली बात

नित्य एक ही दृश्य, एक ही राग, एक ही स्वर सुनते-सुनते हृदय में खटकने लगता है।

उस दिन छाया उदास बैठी थी। उसने अपने पालतू रंग-बिरंगे पक्षियों को बंधन-मुक्त कर दिया था। वह विचार कर रही थी कि इन आकाश में भटकने-वाले, प्रकृति की मुसकान पर नृत्य करनेवाले और स्वतंत्रता की गोद में खेलनेवाले विहंगों को बंदी बना-कर रखना कितना अन्याय है। वे पालतू, अपने पंखों से शक्ति-हीन पक्षिगण पेड़ों के झुरमुट में से छाया का यह खेल बड़े ध्यान से देख रहे थे। यह एक नवीन पहेली थी।

युवक कार्य समाप्त कर अपने घर लौटा। देखा, कुछ समझ न सका। उसने बड़े कुतूहल से पूछा—"छाया, आज ये पिंजड़े खाली क्यों पड़े हैं? ओह! तुम्हारा मुँह कैसा हो गया है? आँखें भरभरा उठी हैं, क्या बात है?"

छाया की आँखों में स्वतंत्रता की प्यास भरी थी। उसने तड़फड़ाते हुए स्वर में कहा—"पराधीनता

पिंजड़े में फड़फड़ा रही थी; वर्षा-ऋतु के ये काले बादल उन्हें कोई संदेश दे रहे थे। मैंने उन्हें छोड़ दिया, प्रेम की अतृप्त बूँदों से प्यास बुझाने के लिये।"

"यह नया खेल कैसा छाया? तुम्हारे विचारों और कार्य-क्रम में परिवर्त्तन हो रहा है। तुम अकेले बैठी रोया क्यों करती हो?"

"कुछ नहीं! एक नवीन पीड़ा का अनुभव कर रही हूँ"

"कैसी?"

"उसे व्यक्त नहीं कर सकती।"

"उसकी कोई दवा है?"

छाया चुप थी। युवक छाया की ओर एकटक देखने लगा। आँखों ने अपनी सांकेतिक भाषा में कुछ बातें कीं।

युवक को कुछ कहने का साहस न हुआ। विचित्र समस्या थी।

दूसरे दिन फिर युवक जब लौटा, तो उसने देखा—छाया न थी। हृदय-पट पर इंद्र-धनुष के

समान छाया अपनी मुसकान छोड़कर लुप्त हो गई थी। युवक ने सोचा, छाया इस जीवन से संतुष्ट न रह सकी।

उस सूने घर में, अंधकार की छाया में, निराशा अपना नृत्य दिखला रही थी। युवक भी घर छोड़कर चला गया। पथ-विहीन होकर भटकने लगा।

(५)

मन में ग्लानि थी। हृदय में धधकती हुई ज्वाला जल रही थी। संसार की मनोरमता पिछली रात के एक स्वप्न की तरह नष्ट हो गई थी। जिस छाया के अवलंब पर संसार से अपना नाता तोड़ा था, वह भी चली गई। कोई अपना न हुआ। जीवन काटने के लिये अब कोई सुख न था।

अपने को मिटा देने की इच्छा होते हुए भी मनुष्य आसानी से, विना किसी ईर्ष्या की जलन के, अपने प्राण देने के लिये प्रस्तुत नहीं होता। जीवन का कुतूहल नित्य नवीन खेल देखने के लिये उत्सुकता

से अपने पंख फैलाए रहता है, चाहे प्रलय का भीषण तूफ़ान ही क्यों न उठा हो।

मन बहलाने के लिये वह नाटक देखने जाने लगा। एक दिन सहसा छाया की वह बात याद पड़ी कि हम लोग संसार-रंग-मंच के अभिनेता हैं; तो फिर बनावटी नाटक में ही क्यों न अभिनय करूँ।

कुछ दिनों के बाद उसे एक प्रसिद्ध नाटक-कंपनी में स्थान मिल गया। उसकी रसीली आँखें, सुनहले केश एक अभिनेता के उपयुक्त थे।

वह कंपनी के साथ अपना कौशल दिखलाता-फिरता रहा। उसके अभिनय पर लोग चकित हो जाते। वाह-वाह की ध्वनि से रंग-मंच गूँज उठता। दिन-पर-दिन उसका सम्मान बढ़ने लगा। आदर उसके सम्मुख हाथ फैलाए खड़ा रहता।

वह नाटकों में प्रधान पात्र का पार्ट करता।

× × ×

आर्य-नाटक-मंडली भारतीय प्राचीन नाटकों का अभिनय करने में प्रसिद्ध थी। शिक्षित जनता उसका

अभिनय देखने के लिये प्रत्येक नगर में उत्सुक रहती।

उस दिन वसंत-सेना का अभिनय था।

वह 'चारुदत्त' का पार्ट कर रहा था। रंगशाला जनता से ठसाठस भरी थी। वह रंगमंच पर आया, आँखें दौड़ाने लगा। प्रसिद्ध अभिनेता होने के कारण हर्ष की तालियाँ पिट रही थीं।

उसने आश्चर्य से देखा, उसे छाया का भ्रम हो रहा था। आज बड़े उत्साह से वह अभिनय करने लगा। जनता मुग्ध होकर देखने लगी। हज़ारों आँखें उसपर एकसाथ गड़ गई थीं।

छाया अपने नवीन प्रेमी के साथ प्रथम पंक्ति के 'कोच' पर बैठी हुई अद्‌भुत दृश्य देख रही थी।

सूली का दृश्य था।

चारुदत्त वधिकों के बीच में सूली के पास खड़ा था। वधिक प्राचीन प्रथा के अनुसार अपराध की घोषणा कर रहा था—

"इस चारुदत्त ने अपने पर विश्वास करनेवाली वेश्या—इस नगर की शोभा 'वसंतसेना' की हत्या

की है। न्यायालय ने इसको सूली की आज्ञा दी है। प्रत्येक नागरिक को इस घटना से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए... . ...!"

दर्शकों में आगे ही बैठी हुई छाया अपने प्रेमी से कहने लगी—"देखो! यह झूठा ही अपवाद है कि वेश्याएँ पुरुषों को धोखा देती हैं। यह प्रणय-शालिनी वसंतसेना एक निर्दय प्रेमी की प्रतिहिंसा का शिकार हुई है। सचमुच पुरुष बड़े निर्दय होते हैं!"

छाया की आँखों में वसंतसेना के प्रति सहानुभूति थी। वह चारुदत्त को फाँसी पर लटकते ही देखना चाहती थी। उसके प्रेमी के हृदय में वेश्या-संसर्ग से एक प्रकार का भय उत्पन्न हो रहा था।

छाया ने कहा—"क्यों? वेश्याओं पर ही यह झूठा आक्षेप है न?"

वह न बोला। रंग-मंच पर अभिनय हो रहा था। उस भीषण परिणाम से वह सशंक हो रहा था।

शकार आया, उसने चारुदत्त को सूली देने के

लिये शीघ्रता की। चारुदत्त सूली पर चढ़ा, सूली आधुनिक फाँसी के ढंग की बनी थी।

छाया यह बीभत्स दृश्य न देख सकती थी। अपनी कोमलता दिखाने के लिये वह भय-विकृत होकर अपने प्रेमी के गले से लिपट गई।

वधिक ने कहा—"चलो, चारुदत्त फाँसी पर चढ़ो।"

अभिनेता ने कहा—"ठीक है, जब वसंतसेना ही नहीं तो जीकर क्या करूँगा! फाँसी का आलिंगन ही सुखद होगा।"

इतने में वसंतसेना दौड़ती हुई आती है। दूसरी ओर से शर्विलक "चारुदत्त को छोड़ दो" चिल्लाता हुआ आता है।

उधर रंगमंच में शर्विलक चिल्ला रहा था, चारुदत्त को फाँसी से उतारने के लिये। मूल-अभिनय में था भी ऐसा ही; परंतु यह क्या! अभिनेता चारुदत्त ने सचमुच पैरों से तख़्ता हटा दिया। वह झूलने लगा!

चिल्लाहट मच गई। रंग-मंच के प्रबंधकर्त्ता दौड़ पड़े, अभिनय विशृंखल हो गया। फाँसी से तत्काल उतारने की कोई क्रिया लोगों के समझ में न आई। सब शेष हो गया। नाटक समाप्त हो चुका था।

संचालक ने रंगमंच पर आकर कहा—

"प्रसिद्ध अभिनेता किशोरजी ने आज खेल में ही अपना अंत कर दिया है। वह हमारी कंपनी के रत्न थे। इस घटना से हम लोग हृदय से दुःखित हैं।"

छाया किशोर का नाम सुनकर चौंक पड़ी।

पूर्व-काल की स्मृतियों ने आहें खींचीं। आँखों से आँसू के दो बूँद टपक पड़े।

अपराध

काशी,

५-१०-२७

प्रिय भाई केशव,

तुम्हारा पत्र दो मास से नहीं आया, मुझे दुःख है, कभी दो-चार लाइन तो लिख दिया करो ! मैं जानता हूँ, तुम्हें अवकाश नहीं मिलता। तुम दिन-रात अपनी धुन में मस्त रहते हो, तुम्हारी सफलता का समाचार मुझे समाचारपत्रों से ज्ञात हो जाता है।

विश्वास है, पत्र न लिखने पर भी तुम मुझे भूल नहीं सकते। अब तुम दूसरे क्षेत्र में हो और मैं

दूसरे ! या यों कहना चाहिये कि तुम स्वतंत्र हो, और मैं परतंत्र ।

तुम समाज से खुले मैदान लड़ रहे हो, यह तुम्हारा ही साहस है । मेरा तो गृहस्थी के बन्धन में पड़कर उत्साह ही जाता रहा । बैठा विचार किया करता हूँ—घोर हिन्दू-समाज में फूला-फला हूँ, उसकी बुराई जानते हुए भी कुछ नहीं कर सकता । एक दिन जूता पहनकर पानी पी लिया था, तो चार दिनों तक माँ बोली नहीं थीं । तुम्हीं कहो, घर में कलह करूँ या समाज से झगड़ा ?

आजकल घर में स्त्रियाँ मुझसे अप्रसन्न हैं । मेरा अपराध यह है कि इधर मैंने 'मङ्गला' नाम की एक दासी को नियुक्त किया है । उसका क़िस्सा इस तरह है—एक दिन सन्ध्या-समय मैं बरामदे में बैठा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था । गङ्गा ने आकर कहा—सरकार, एक औरत नौकरी के लिए आई है, उससे किसी ने कह दिया है कि कोठी में एक दासी की ज़रूरत है ।

मैंने कहा—तङ्ग न कर, इस समय पढ़ रहा हूँ।

उसकी ओर ध्यान न देकर मैं पढ़ने लगा। पुस्तक की तरफ़ से ध्यान हटा, मैंने देखा, वह चुपचाप खड़ा है। मैंने समझा, इसमें कुछ रहस्य है। मैंने कहा—तू क्यों खड़ा है गङ्गा ?

उसने डरते हुए कहा—सरकार, वह बड़ी ग़रीब मालूम पड़ती है, दो दिनों की भूखी है।

मैंने कहा—अच्छा, उसे यहाँ ले आ।

वह बड़ी प्रसन्नता से आगे बढ़ा। लौटकर आया, उसके पीछे वह स्त्री खड़ी हो गई। उसके मैले वस्त्र पुराने और कई जगह फटे हुए थे।

मैंने उसे ध्यान से देखा, उसका सौन्दर्य दरिद्रता से प्रणय-भिक्षा माँग रहा था। उसकी डबडबाई आँखें जैसे बातें कह रही हों। मैं समझ गया, इस स्त्री का करुण रूप ही गंगा की सहानुभूति का कारण हुआ है।

मैंने कहा—गङ्गा, यह नौकरी चाहती है, इसकी ज़मानत कौन करेगा ?

भूली बात

गङ्गा उस स्त्री की तरफ़ देखने लगा। स्त्री ने धीमे स्वर में कहा—मुझे इस शहर में कोई नहीं जानता। मैं अभागिनी हूँ, भूखी हूँ।

मैंने कहा—इस तरह मैं कैसे रख सकता हूँ, ज़िम्मेदारी का काम है।

मेरा उत्तर पाकर वह कुछ न बोली और जाने लगी। उसकी आशा का सूर्य अस्त होने जा रहा था।

मुझे कौतूहल हुआ। मैंने कहा—गङ्गा, उसे यहाँ ले आ। वह फिर आकर मौन खड़ी हो गई।

गङ्गा कहने लगा—सरकार, यह चोर नहीं मालूम पड़ती ; भाग्य की सताई हुई है।

मैंने कहा—अच्छा, मैं इसे नौकरी देता हूँ। ज़नाने मकान में भेज दे।

उसकी निरीहता पर मुझे तरस आया और बिला किसी ज़मानत के मैंने उसे नियुक्त कर लिया।

बोलो केशव ! ठीक किया या नहीं ?

तुम्हारा,

—प्रभात

(२)

काशी,

१२-१०-२७

भाई केशव !

तुम्हारा पत्र मुझे कल मिला था। सब समाचार विदित हुए। तुमने लिखा है कि समाज में अभी ऐसी-ऐसी पतिता और निस्सहाय दरिद्र अबलाएँ हैं, जिनकी सहायता और उत्थान के नाम लेते से हिन्दू-समाज काटने दौड़ता है।

तुम्हारी इन पंक्तियों को पढ़कर मुझे प्रतीत हुआ, जैसे प्रत्यक्ष में तुम अपने स्वाभाविक जोशीले शब्दों में कह रहे हो—"निर्लज्ज समाज की बातों पर ध्यान देने से साफ़ दिखाई देता है कि पुरुष-जाति ने अपने सुख और अधिकार सुरक्षित रखने के लिए ही समाज के नियम बनाए हैं।" कोई पुरुष शराब पीता है, मांस खाता है, वेश्याओं की जूतियाँ साफ करता है और फिर घर में चुपचाप आकर रामानन्दी तिलक लगाकर बैठ जाता है। कोई उसपर ध्यान नहीं देता, और समाज देखकर भी उसका कुछ नहीं कर सकता। और, यदि किसी स्त्री से साधारण अपराध हो गया तो तत्काल वह समाज से निकाल दी जायगी। मैं पूछता हूँ—वह क्या करेगी? क्या पेट के लिए वेश्या होना अस्वाभाविक है?

तुम्हारे वह स्वर अभी तक गूँज रहे हैं। मैं भूला नहीं हूँ। तुम्हारी बातों पर मैं ख़ूब विचार करता हूँ।

तुम स्त्रियों को शिक्षित बनाना चाहते हो—राजनीतिक परिस्थिति को समझाने के लिए, देश की

दशा पर आँसू बहाने के लिए, और अपनी सन्तान को साहसी और उद्योगी बनाने के लिए, न कि सुन्दर और साहित्यिक भाषा में प्रेम-पत्र लिखने के लिए !

ख़ैर, इन विषयों पर तुम्हीं विचार करो, मैं तो अपनी आत्मा से लड़ रहा हूँ। देखूँ, सफल होता हूँ या नहीं। विद्रोह का प्रारम्भ है।

हाँ, तुम्हें मैंने 'मङ्गला' के सम्बन्ध में कुछ लिखा था। उसकी नई ख़बर सुनो, घर में स्त्रियाँ कहती हैं कि जब से मङ्गला आई है, तब से कई सामान चोरी हो गए हैं। उसी पर सबका सन्देह है। वह कभी-कभी अकेले बैठकर रोती हुई पाई जाती है, इसपर भी सब लोग अप्रसन्न रहते हैं।

गङ्गा भी कई बार उसकी निन्दा कर चुका है। उसका तात्पर्य मैं समझ गया, मङ्गला को मैंने नौकरों के बीच अन्य दासियों की भाँति कभी हँसते-बोलते नहीं देखा है। हो सकता है, इसीलिए मङ्गला उसकी आँखों में खटकती हो ?

भूली बात

अभी कल की बात है, मङ्गला मेरे बच्चे को खिला रही थी। मैंने बच्चे को बुलाते हुए मङ्गला से कहा—उसे यहाँ ले आ।

वह लेकर आई, बच्चा खेलने लगा। मङ्गला खड़ी थी। मैंने पूछा—मङ्गला, तुम्हारे बारे में बहुत-सी बातें सुनी जाती हैं।

बड़े साहस से उसने कहा—कौन-सी बात सरकार?

मैंने कहा—तू दिन-रात रोनी सूरत क्यों बनाए रहती है? अब तो तुझे कोई कष्ट नहीं है?

उसकी आँखें भर गईं। वह बच्चे को लेकर जाना चाहती थी। मैंने कहा—क्यों, ठीक है?

उसने अस्फुट शब्दों में कहा—हँसी कभी आती नहीं, इसीलिए नहीं हँसती। दुख में रोना ही अच्छा लगता है।

मैंने कहा—तेरे दुख का कारण? यहाँ तुझे कष्ट है क्या?

"मुझे कोई कष्ट नहीं है।"

"तब ?"

"दूसरे के कष्ट के लिए रोती हूँ।"

मैं उसकी तरफ़ देखने लगा; उसने आँखें नीची कर लीं। उसी समय एक दासी ने पुकारा—मङ्गला, बच्चे को ले आ। मङ्गला चली गई। मैं फिर कुछ भी न पूछ सका।

केशव, मैं बहुत-से स्वभाव का अध्ययन कर चुका हूँ, मुझे किसी के चरित्र का अध्ययन करने में बड़ा आनन्द मिलता है; किन्तु मैं सच कहता हूँ, मङ्गला मुझे विचित्र मालूम पड़ती है।

मङ्गला के सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं समझ सका हूँ। इतना अवश्य जानता हूँ कि वह दुखी है, और सो भी अपने लिये नहीं।

अब पत्र समाप्त करता हूँ, फिर कभी लिखूँगा।

स्नेही,

—प्रभात

(३)

काशी,

२-११-२७

भैया केशव !

तुमने इस बार दो सप्ताह बाद मेरे पत्र का उत्तर दिया है। तुम बीमार थे, अब अच्छे हो गए, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

तुम कब तक निराश प्रेमी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करोगे ? पहले तुम कहा करते थे कि मैं सांसारिक विलासमय प्रेम नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ पवित्र गङ्गाजल की तरह निर्मल और शुद्ध

प्रेम ! अब देखता हूँ, तुम्हारी बातें सत्य हो रही हैं, और इसीलिए शायद तुम विवाह नहीं करते। क्यों, क्या अभी तक कोई मिला नहीं ?

मैं तो भाई, प्रेम को नमस्कार करता हूँ। मैंने अपने जीवन में कभी स्वच्छ और पवित्र प्रेम देखा ही नहीं। वास्तव में यह सब कवि की कल्पना है और अभाव के समय रोने का बहाना है। इतना समझते हुए भी मैं कभी-कभी रोता हूँ, इसीलिए रोने का मर्म जानता हूँ। आह ! रोने में भी कभी-कभी बड़ा मज़ा मिलता है—और ऐसे समय रोने में, जब आँसू पोंछनेवाला भी न हो। रहने दो, ऐसी बातें न लिखूँगा, उलटा तुम हँसी उड़ाओगे।

कलुषित वासनाओं से धुँधले आकाश में चाँदनी छिटकी है। मैं प्रेम-राज्य से निर्वासित हूँ ! मैंने आँख भरकर प्रेम देखा नहीं है, जी भरकर उसके सङ्गीत को सुना भी नहीं; किन्तु उसके स्वर मुझे परिचित हैं। मैं उस दर्द को जानता हूँ, अतएव उन दर्दवालों के प्रति मेरी सहानुभूति अवश्य है।

मङ्गला के सम्बन्ध में कुछ लिखकर मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि यह मुझे एक नवीन अनुभव हुआ है।

उस दिन अमावस्या की काली रात थी। बड़ा सन्नाटा था। मैं नौ बजे ही सो गया था। आधी रात को शोर हुआ, मैं उठकर बैठ गया। आश्चर्य और उत्सुकता से ध्यान लगाकर सुनने लगा, गङ्गा ज़ोर से कह रहा था—इसको ख़ूब मारो।

मैं कमरे में शय्या पर से उठा और बाहर आकर देखने लगा। मेरे तीनों नौकरों ने किसी आदमी को पकड़ा है और उसे मार रहे हैं। उनके सामने मङ्गला खड़ी रो रही है।

मैंने डाँटते हुए कहा—मूर्खो! तुम लोग क्या कर रहे हो, इतना शोर क्यों मचाया है? क्या बात है? वह कौन है?

उन सबों ने उस आदमी को पकड़कर मेरे सामने खड़ा कर दिया। मङ्गला को मेरे सामने आने का साहस न हुआ, वह दूर खड़ी थी।

नौकरों में से गङ्गा एक साँस में कहता गया—

हुज़ूर, इसने चोरी की है, इसे थाने में भेजना चाहिए ! साला बड़ा होशियार है। यही कई बार कोठी का सामान इसी तरह ले गया है।

मैंने कहा—इसने क्या चुराया है ? कैसे चुराया है ?

गङ्गा ने सामने एक कम्बल और कुछ कपड़े दिखलाते हुए कहा—इसे ऊपर की खिड़की से मङ्गला ने फेंका था। मुझे इसकी आहट लग गई थी। मैं उस समय जागता रहा, इसने सलाई वाली थी। ऊपर से धम-से कोई चीज़ नीचे गिरी। मैंने सचेत होकर द्वार खोला, यह भाग रहा था, मैंने इसे पकड़ा है।

मैंने घूमते हुए देखा, वह थरथर काँप रहा था। हाथ जोड़कर दया-याचना करने लगा।

मैंने आश्चर्य से कहा—क्या मंगला ने फेंका था ?

सब नौकरों ने एक स्वर में कहा—हाँ सरकार, उसी ने फेंका था।

अपराधी की तरह मङ्गला मेरे सामने आ गई और बड़े साहस से उसने कहा—अपराध मेरा है। मैंने

ऊपर से फेंका था, इन्होंने इसे लिया, यह निर्दोष हैं।

लम्प के प्रकाश में मैंने देखा—मङ्गला की आँखों में बिजली चमक रही थी। वह दरिद्र पुरुष मङ्गला की तरफ़ देख रहा था; वह अत्यन्त दुर्बल था, आँखें धँसी थीं। बड़ा डरावना मालूम पड़ता था।

मैंने पूछा—मङ्गला ने तुझे क्यों दिया? वह तेरी कौन है?

वह चुप था। मैंने फिर कहा—बोल! बताता क्यों नहीं?

उसने कहा—मैं इसी के लिए जीता हूँ, यह मुझे मरने नहीं देती।

रात्रि के दो बज रहे थे। मैं कुर्सी पर बैठकर विचार करने लगा—इन दोनों का प्रेम है, तभी मङ्गला ने इसके लिए अपराध किया है। ये लोग दरिद्र हैं; किन्तु इनके पास भी हृदय है। ये प्रेम करना जानते हैं। एक के लिए दूसरा अपना सर्वनाश करने के लिए प्रस्तुत है। अभाव और दरिद्रता ने ही मङ्गला को चोरी करने के लिए बाध्य किया है।

मैंने कहा—मङ्गला, यदि तू सच-सच सब हाल बता दे तो मैं तुझे छोड़ दूँगा, तूने इसके लिए क्यों चोरी की ?

उसने सलज्ज करुण स्वर में कहा—हम और यह भागकर अपने देश से चले आए हैं, यह मेरे पति हैं। बहुत दिनों तक नौकरी करते रहे; किन्तु यह नौकरी भी न कर सके, मेरे पास दिन-रात बैठे रहने में ही यह अपना सब कुछ खो बैठे। इनसे नौकरी होती नहीं और अब कहीं मिलती भी नहीं। इसलिए मैं ही नौकरी करती हूँ। मेरा पेट तो यहाँ भर जाता है, पर इनके लिए चोरी करनी पड़ती है।

मैंने कहा—और कुछ ?

उसने कहा—इतना ही मेरा अपराध है।

उसकी बातों का मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने कहा—मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।

वह आदमी मेरी तरफ़ आश्चर्य से देखते हुए मेरे पैरों पर गिर पड़ा !

मैंने फिर कहा—अब तुम लोग क्या करोगे? कहाँ जाओगे?

मेरे नौकर आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखने लगे। उसने कहा—संसार में कहीं स्थान नहीं है, कहाँ जाऊँगा?

मङ्गला को विश्वास था कि अपराध क्षमा करते हुए भी अब मैं उसे अपने यहाँ स्थान नहीं दूँगा।

मैंने कहा—तुम घबड़ाओ नहीं, मङ्गला को मैं निकालूँगा नहीं। तुम यदि नौकरी करना चाहो तो मेरे यहाँ रह सकते हो।

वह कुछ बोल न सका, फूट-फूटकर रोने लगा।

उस दिन से दोनों मेरे यहाँ बड़े आनन्द से रहते हैं, और सब लोगों को इससे बड़ा असन्तोष है। उनको खटका लगा रहता है; पर मैं निश्चिन्त हूँ कि अब वे चोरी नहीं करेंगे।

तुम्हारी क्या सम्मति है? क्या मैंने भूल की?

तुम्हारा,

—प्रभात

अन्धकार

मैंने फिर कहा—अब तुम लोग क्या करोगे? कहाँ जाओगे?

मेरे नौकर आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखने लगे। उसने कहा—संसार में कहीं स्थान नहीं है, कहाँ जाऊँगा?

मङ्गला को विश्वास था कि अपराध क्षमा करते हुए भी अब मैं उसे अपने यहाँ स्थान नहीं दूँगा।

मैंने कहा—तुम घबड़ाओ नहीं, मङ्गला को मैं निकालूँगा नहीं। तुम यदि नौकरी करना चाहो तो मेरे यहाँ रह सकते हो।

वह कुछ बोल न सका, फूट-फूटकर रोने लगा।

उस दिन से दोनों मेरे यहाँ बड़े आनन्द से रहते हैं, और सब लोगों को इससे बड़ा असन्तोष है। उनको खटका लगा रहता है; पर मैं निश्चिन्त हूँ कि अब वे चोरी नहीं करेंगे।

तुम्हारी क्या सम्मति है? क्या मैंने भूल की?

तुम्हारा,

—प्रभात

अन्धकार

अन्धकार

पड़ोस में प्रायः सभी उसके स्वभाव से अप्रसन्न रहा करते थे। उसके आस-पास के मकानवाले तो उसके रहन-सहन से घबरा उठे थे। कोई उसे चुड़ैल कहकर मन-ही-मन पचास गालियाँ देता, कोई उसके चरित्र पर टीका-टिप्पणी जड़ देता। जिस दिन सबेरे कोई उसका मुँह देख लेता, उस दिन उसे यही चिन्ता लग जाती कि भगवान, आज का दिन कैसा कटेगा ? उसके प्रति न-जाने क्यों लोगों की ऐसी धारणा थी।

वह विधवा थी ; मगर सदैव सौभाग्यवती है ; क्योंकि उसने अपने हाथों की चूड़ियाँ नहीं तोड़ी थीं। उसके दो-मंजिले मकान के सामने एक बूढ़े मुंशीजी रहते हैं। उन्हें उसका किस्सा कंठस्थ है। मुंशीजी बड़े ज़िन्दा-दिल हैं। उन्होंने उसका नाम 'द्रोपदी' रखा है। मुंशीजी उसकी जवानी की कहानी बड़े शौक से कहा करते—

"इसके पति का नाम था—मुरलीमनोहर ! वह बेचारा बड़ा सीधा और बहुत ही मिलनसार आदमी था। जब देखता, तभी सलाम करता। किसी से मेल-जोल नहीं रखता था, अपने काम से काम ! .खूबसूरत जवान था, गोरा बदन, लम्बा क़द ! उसकी आँखें सदैव झुकी रहती थीं। उसकी कपड़े की दुकान थी, दिन-भर मेहनत करता, चार पैसे पैदा करता था। अच्छे कुल में पैदा हुआ था, अपनी मर्यादा बनाए रखता था ; मगर उसका भाग्य फूटा था, जो ऐसी कुलक्षणा स्त्री मिली। इसकी चाल उसे पसन्द न थी।

"ईश्वर ने सब कुछ दिया था ; मगर वह सुखी

न था। इसको वह किसी बात की तकलीफ न होने देता; लेकिन इसका मिज़ाज हमेशा आसमान पर चढ़ा रहता। ऐसी विचित्र यह स्त्री है!

"द्रौपदी-महारानी को लड़के की बड़ी साध थी। बड़ा जंत्र-मंत्र हुआ, मन्नतें मानी गईं। इन सबका नतीजा कुछ न हुआ।

"इसके बहुत रोने-गाने पर मुरलीमनोहर ने एक लड़का गोद लिया। उसका नाम जीवन रखा गया।

"अन्त में एक दिन की बीमारी में मुरलीमनोहर चल बसा। उसके मरते ही इसने अपना पंख फैलाया। जब तक वह जीता था तब तक बराबर इसको पर्दे में रखता था। ओह! उसके उठ जाने पर तो इसने अपना मुँह खोल दिया। अब इसे किसी की लज्जा नहीं। अपने घर में दो-चार केरायेदार बसाये हैं। सबसे लड़ती-झगड़ती है। तड़ातड़ जबाब देती है।"

इतना कहकर मुंशीजी कहते—"ईश्वर ऐसी स्त्री किसी को न दे।"

❀ ❀ ❀

भूली बात

"आँ..आँ...आँ"

"बोल, फिर ऐसा करेगा ?"

धमाधम ! जीवन की पूजा हो रही थी।

"अरे जान निकली...आ।"

"मैं पूछती हूँ, फिर जवाब देगा ? बोल !"

"नहीं, हाथ जोड़ता हूँ, बस।"

पास के मकान में एक स्त्री को कुछ तरस आई, उसने पुकारकर कहा—"ओ जीवन की माँ, अरे जाने दो, लड़का है। अब न मारो।"

तड़पकर जीवन की माँ ने उत्तर दिया—"चुप रहो, तुमसे क्या मतलब ? पढ़ेगा लिखेगा नहीं, बात का जवाब देगा ! मैं तो इसके लिए बर्बाद हो गई, पढ़ाई का खर्च और मास्टरों का वेतन देते-देते नाकों दम हो गया, और यह कुछ पढ़ता ही नहीं।"

सहानुभूति प्रगट करनेवाली स्त्री चुप हो गई। उसने मन में कहा—"मुझसे क्या सम्बन्ध, बैठे-बिठाए झगड़ा कौन मोल ले ?"

१२ वर्ष का बालक जीवन दिन-भर परिश्रम करता। इतनी छोटी-सी अवस्था में वह स्कूल की सातवीं कक्षा में पढ़ता था। अध्यापक उससे बड़े प्रसन्न रहते। उसे होनहार समझकर सब उससे स्नेह -- प्रेम रखते, मगर श्रीमतीजी उसकी पढ़ाई से सदैव असंतुष्ट रहतीं। जीवन के गरीब माँ-बाप को पाँच सौ रुपये देकर उन्होंने उसे ख़रीदा था, उसे गोद लिया था, अपना लड़का बनाया था। अपनी सब सम्पत्ति उसके नाम लिखकर, उसे पढ़ा-लिखाकर, अन्त में एक दिन उसे ऊँची अफ़सरी की कुर्सी पर बैठे हुए देखना ही उनकी एकमात्र अभिलाषा थी। उस अभिलाषा में उनका यश, मान और कीर्त्ति, सभी कुछ था।

प्रतिदिन जीवन की पढ़ाई के सम्बन्ध में वह उससे पूछती—आज क्या पढ़ा? वह अपने सामने बैठाकर उसे पढ़ते हुए देखती। उसकी आत्मा खिल उठती।

एक साधारण अपराध के लिए वह कठोर-से-कठोर दंड उसे देती थी। जीवन में किसी तरह

की त्रुटि वह नहीं देखना चाहती थी। वह उसे घर के बाहर न निकलने देती। लड़कों के साथ खेलना भी उसे मना था।

जब कभी वह अपने सम्बन्धियों के यहाँ जाती तो उसके वार्त्तालाप का विषय जीवन की पढ़ाई ही रहती। वह प्रायः लोगों से उसकी निन्दा करती, कहती—"लड़का बड़ा दुष्ट है। मेरे कहने में नहीं रहता, आगे चलकर न-जाने कैसा निकलेगा?"

किन्तु उसकी ऐसी-ऐसी बातों के सुननेवाले केवल मन-ही-मन मुस्करा देते थे।

मनोविज्ञान के आचार्यों को भी उसके दिल की बातें समझने में एक बार भ्रम हो सकता है। कभी वह जीवन को खूब पीटती और कभी उसके चुप हो जाने के बाद स्वयं फूटकर रोने लगती, उसे गले से लगा लेती, चूम लेती, हँस देती। ऐसी विचित्र वह स्त्री थी।

वह झगड़ालू प्रकृति की थी। कभी-कभी दूसरों का गुस्सा वह जीवन पर ही शान्त करती थी। किसी से उसकी न बनती। कोई उससे जलता और

कोई घृणा करता। ऐसी स्थिति में केवल जीवन ही उसके जीवन का एकमात्र अवलम्ब था।

❀ ❀ ❀

सावन की अँधेरी रात थी। काले बादलों ने आकाश को बड़ा ही भयानक बना डाला था। वायु के झोंके से वृक्षों की खड़खड़ाहट का कैसा डरावना स्वर मालूम पड़ता था! ऐसे समय किसी का चीत्कार सुनाई पड़ा—

"हाय, मैं तो लुट गई—आ...ह"

इधर-उधर कुछ लोग अपनी खिड़कियों पर दिखाई दिये, वे आश्चर्य से सुनने लगे।

"अरे मेरा जी...व...न, अरे मेरा लाल! तू कहाँ गया रे? ओह! मैं नहीं जानती थी कि मेरा जीवन मुझे धोखा देकर चला जायगा। हाय रे, अब मैं क्या करूँ?"

उसके भाग्य की कुञ्जी खो गई थी। बहुत देर रोने-पीटने के बाद, घर में से शव निकाला गया। वह लस्त-पस्त, झूमती-चिल्लाती उसके साथ चली।

दो स्त्रियाँ उसे सम्हाले हुए थीं। उस निचाट रात में उसने देखा—जीवन के सूने मार्ग पर चारों ओर अन्धकार छा गया है।

लेकिन, बूढ़े मुंशीजी को यह कोलाहल बड़ा नीरस प्रतीत हुआ। उनकी नींद खुल गई थी। लैम्प जलाकर वह अपनी बैठक में न-जाने किससे कह रहे थे—जब तक जीता था, गालियाँ मिलती थीं, मार पड़ती थी, कभी सुखी न था। अब चल बसा तो उसका गुण-गान हो रहा है। उसके लिए छाती पिट रही है! वाह री, दुनिया, धन्य है!

विद्रोही

"मान जाओ, तुम्हारे उपयुक्त यह कार्य न होगा।"

"चुप रहो—तुम क्या जानो।"

"इसमें वीरता नहीं है, अन्याय है।"

"बहुत दिनों की धधकती हुई ज्वाला आज शान्त होगी।" शक्तिसिंह ने एक लम्बी साँस फेंकते हुए, अपनी स्त्री की ओर देखा।

"..."

"..."

भूली बात

"कलङ्क लगेगा, अपराध होगा।"

"अपमान का बदला लूँगा। प्रताप के गर्व को मिट्टी में मिला दूँगा। आज मैं विजयी होऊँगा।" बड़ी दृढ़ता से कहकर शक्तिसिंह ने शिविर के द्वार पर से देखा—मुग़ल-सेना के चतुर सिपाही अपने-अपने घोड़ों की परीक्षा ले रहे थे। धूल उड़ रही थी। बड़े साहस से सब एक दूसरे में उत्साह भर रहे थे।

"निश्चय महाराणा की हार होगी। बाईस हज़ार राजपूतों को दिन-भर में मुग़ल-सेना काटकर सूखे डंठल की भाँति गिरा देगी।"—साहस से शक्तिसिंह ने कहा।

"भाई पर क्रोध करके, देश-द्रोही बनोगे·····"—कहते-कहते उस राजपूत-बाला की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

शक्तिसिंह अपराधी की नाईं विचार करने लगा। जलन का उन्माद उसकी नस-नस में दौड़ रहा था। प्रताप के प्राण लेकर ही छोड़ेगा, ऐसी प्रतिज्ञा थी।

नादान दिल किसी तरह न मानेगा। उसे कौन समझा सकता था?

रण-भेरी बजी।

कोलाहल मचा। मुग़ल-सैनिक मैदान में एकत्रित होने लगे। पत्ता-पत्ता खड़खड़ा उठा। बिजली की भाँति तलवारें चमक रही थीं। उस दिन सब में उत्साह था। युद्ध के लिए भुजाएँ फड़कने लगीं।

शक्तिसिंह ने घोड़े की लगाम पकड़कर कहा—आज अन्तिम निर्णय है, मरूँगा या मारकर ही लौटूँगा!

शिविर के द्वार पर खड़ी मोहिनी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी। उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—ईश्वर सद्‌बुद्धि दे, यही प्रार्थना है।

(२)

एक महत्त्वपूर्ण अभिमान के विध्वंस करने की तैयारी थी। प्रकृति काँप उठी। घोड़ों और हाथियों के चीत्कार से आकाश थरथरा उठा। बरसाती हवा के थपेड़ों से जङ्गल के वृक्ष रण-नाद करते हुए झूम

रहे थे। पशु-पक्षी भय से त्रस्त होकर आश्रय ढूँढ़ने लगे। बड़ा विकट समय था।

उस भयानक मैदान में राजपूत-सेना मोर्चा-बन्दी कर रही थी। हल्दीघाटी की ऊँची चोटियों पर भील लोग धनुष चढ़ाये उन्मत्त के समान खड़े थे।

"महाराणा की जय !"—शैलमाला से टकराती हुई ध्वनि मुग़ल-सेनाओं में घुस पड़ी। युद्ध आरम्भ हुआ। भैरवी रणचंडी ने प्रलय का राग छेड़ा। मनुष्य हिंस्र जन्तुओं की भाँति अपने-अपने लक्ष्य पर टूट पड़े। सैनिकों के निडर घोड़े हवा में उड़ने लगे। तलवारें बजने लगीं। पर्वतों के शिखरों पर से विषैले बाण मुग़ल-सेना पर बरसने लगे। सूखी हल्दी-घाटी में रक्त की धारा बहने लगी।

महाराणा आगे बढ़े। शत्रु-सेना का व्यूह टूटकर तितर-बितर हो गया। दोनों ओर के सैनिक कट-कट-कर गिरने लगे। देखते-देखते लाशों के ढेर लग गये।

भूरे बादलों को लेकर आँधी आई। सलीम के सैनिकों को बचने का अवकाश मिला। मुग़लों की

सेना में नया उत्साह भर गया। तोप के गोले उथल-पुथल करने लगे। धाँय-धाँय करती बन्दूक से निकली हुई गोलियाँ दौड़ रही थीं—ओह! जीवन कितना सस्ता हो गया था!

महाराणा शत्रु-सेना में सिंह की भाँति उन्मत्त होकर घूम रहे थे। जान की बाजी लगी थी। सब तरफ से घिरे थे। हमला-पर-हमला हो रहा था। प्राण सङ्कट में पड़े। बचना कठिन था। सात बार घायल होने पर भी पैर उखड़े नहीं, मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नहीं था।

मानसिंह की कुमंत्रणा सिद्ध होनेवाली थी। ऐसे आपत्ति-काल में वह वीर सरदार सेना-सहित वहाँ कैसे आया? आश्चर्य से महाराणा ने उसकी ओर देखा—वीर मन्नाजी ने उनके मस्तक से मेवाड़ के राज्य-चिह्नों को उतारकर स्वयं धारण कर लिया। राणा ने आश्चर्य और क्रोध से पूछा—"यह क्या?"

"आज मरने के समय एक बार राज-चिह्न धारण करने की बड़ी इच्छा हुई है।"—हँसकर

मन्नाजी ने कहा। राणा ने उस उन्माद-पूर्ण हँसी में अटल धैर्य देखा।

मुग़लों की सेना में से शक्तिसिंह इस चातुरी को समझ गया। उसने देखा—घायल प्रताप रण-क्षेत्र से जीते-जागते निकले चले जा रहे हैं! और, वीर मन्नाजी को प्रताप समझकर मुग़ल उधर ही टूट पड़े हैं।

उसी समय दो मुग़ल-सरदारों के साथ, महाराणा के पीछे-पीछे, शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा छोड़ दिया।

(३)

खेल समाप्त हो रहा था। स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर सन्नाटा छा गया था। जन्मभूमि के चरणों पर मर-मिटनेवाले वीरों ने अपने को उत्सर्ग कर दिया था। बाईस हज़ार राजपूत वीरों में से केवल आठ हज़ार बच गये थे।

विद्रोही शक्तिसिंह चुपचाप सोचता हुआ अपने घोड़े पर चढ़ा चला जा रहा था। मार्ग में कटे शव पड़े थे—कहीं भुजाएँ शरीर से अलग पड़ी थीं, कहीं धड़ कटा हुआ था, कहीं खून से लथपथ मस्तक

भूमि पर गिरा हुआ था। कैसा परिवर्त्तन है !—दो घड़ियों में हँसते-बोलते और लड़ते हुए जीवित पुतले कहाँ चले गये ? ऐसे निरीह जीवन पर इतना गर्व !

शक्तिसिंह की आँखें ग्लानि से छलछला पड़ीं—

"ये सब भी राजपूत थे, मेरी ही जाति के खून थे ! हाय रे मैं ! मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ,—क्या सचमुच पूरा हुआ ? नहीं, यह प्रतिशोध नहीं था, अधम शक्त ! यह तेरे चिर-कलङ्क के लिए पैशाचिक आयोजन था। तू भूला, पागल ! तू प्रताप से बदला लेना चाहता था—उस प्रताप से जो अपनी स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्म-भूमि की मर्यादा बचाने चला था ! वही जन्म-भूमि जिसके अन्न-जल से तेरी नसें भी फूली-फली हैं ! अब भी तो माँ की मर्यादा का ध्यान कर !"

सहसा धाँय-धाँय-गोलियों का शब्द हुआ। चौंक-कर शक्तिसिंह ने देखा—दोनों मुग़ल-सरदार प्रताप का पीछा कर रहे थे। महाराणा का घोड़ा लस्त-पस्त

होकर झूमता हुआ गिर रहा है। अब भी समय है। शक्तिसिंह के हृदय में भाई की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज़ हुई—रुको !

दूसरे क्षण शक्तिसिंह की बन्दूक छूटी, पलक मारते दोनों मुग़ल-सरदार जहाँ-के-तहाँ ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँख चढ़ाकर देखा। वे आँखें पूछ रही थीं—क्या मेरे प्राण पाकर तुम निहाल हो जाओगे ? इतने राजपूतों के खून से तुम्हारी हिंसा-तृप्ति नहीं हुई ?

किन्तु यह क्या, शक्तिसिंह तो महाराणा के सामने नतमस्तक खड़ा था। वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—नाथ ! सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो तो इन चरणों पर अपना शीश चढ़ाकर पद-प्रक्षालन कर लूँ, प्रायश्चित्त कर लूँ !

राणा ने अपनी दोनों बाँहें फैला दीं। दोनों के गले आपस में मिल गये, दोनों की आँखें स्नेह की वर्षा करने लगीं। दोनों के हृदय गद्‌गद हो गये।

इस शुभ मुहूर्त्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प-वर्षा की, नदी की कल-कल धाराओं ने वन्दना की।

प्रताप ने उन डबडबाई हुई आँखों से ही देखा—उनका चिर-सहचर प्यारा 'चेतक' दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा खड़ा था।

शक्तिसिंह ने कहा—भैया ! अब आप विलम्ब न करें, घोड़ा तैयार है।

राणा, शक्तिसिंह के घोड़े पर सवार होकर, उस दुर्गम मार्ग को पार करते हुए निकल गये।

(४)

श्रावण का महीना था।

दिन-भर की मार-काट के पश्चात्, रात्रि बड़ी सूनसान हो गई थी। शिविरों में से महिलाओं के रोदन की करुण ध्वनि हृदय को हिला देती थी। हजारों सुहागिनियों के सुहाग उजड़ गये थे। उन्हें कोई ढाढ़स बँधानेवाला न था ; था तो केवल हाहा-कार, चीत्कार, कष्टों का अनन्त पारावार !

शक्तिसिंह अभी तक अपने शिविर में नहीं

लौटा था। उसकी पत्नी भी प्रतीक्षा में विकल थी, उसके हृदय में जीवन की आशा-निराशा क्षण-क्षण उठती-गिरती थी।

अँधेरी रात में काले बादल आकाश में छा गये थे। एकाएक उस शिविर में शक्तिसिंह ने प्रवेश किया। पत्नी ने कौतूहल से देखा, उसके कपड़े खून से तर थे।

"प्रिये !"

"नाथ !"

"तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हुई—मैं प्रताप के सामने परास्त हो गाया !"

बदला
"बदला"

an interesting book with best stories ever read by me.

देश में अकाल पड़ा था। गाँव-देहात उजड़ा हुआ था। दिन अँधेरी रात की तरह भयानक मालूम पड़ता। लोग दानों के लिये तरसते, भूख से छटपटाते और पैसे के लिये रोते थे। ओह! दैव का कितना भीषण परिहास था! आँखें धँस गई थीं, ठोकरें बैठ गई थीं और शरीर निर्बल हो गया था।

गाँव के लोग कहते, ईश्वर का कोप है। बरसात आकाश की ओर देखते ही कटी, जाड़ा ठिठुरते हुए कटा और गरमी अब धूप की ज्वाला से कट रही

है। कैसा अद्भुत खेल है! सचमुच अकाल था। भूमि अपना सूना आँचल फैलाये हुए बैठी थी।

यह गाँव सिसक रहा था। चन्द्रमा ने झोपड़ियों के उस टिमटिमाते हुए प्रकाश को चुरा लिया था। चाँदनी अपनी छाया में बैठाकर उन झोपड़ियों से उसकी कहानी सुनती। सियार बोल रहे थे। कुत्ते भूँक रहे थे। सन्नाटा था। रजनी ताण्डव-नृत्य देख रही थी।

मोती अपनी उदास झोपड़ी में पड़ा सोचता था। रात आँखों से खूब लड़ी थी। जागते ही कटी। ज़मींदार को मालगुज़ारी देना है। खेत-हल बेदखल हो जायगा, घर उजड़ जायगा, सब समाप्त हो जायगा।

× × ×

मोती गरीब था। सबका ताबेदार, नौकर था। वह अभागा अछूत था।

भैंस, बकरी और बैल तो कर्ज में ही नीलाम हो गये थे। खेत भी बेदखल हो गया। झोपड़ी जर्जर हो गई थी। मोती के पास केवल लाल और सफेद गाय

बच गई थी। वह उसे बहुत प्यार करता था। खेत में काम करते हुए जब मोती पुकारता, लाली! वह दौड़ती हुई पहुँचती। पालतू कुत्ते की तरह वह गाय मोती के साथ फिरती। नौ महीने की बछिया थी, तभी उसने उसको पाला था। इससे उसका मोती को बड़ा मोह था।

सोना को पीहर पहुँचाकर मोती बंबई जायगा। नौकरी करेगा, पैसा पैदा करेगा, भूखों मरने से बचेगा।

रेल के टिकट के लिये रुपये न थे। मोती लाली को बेचेगा। सोना ने लाली को न बेचने का अनुरोध किया; किन्तु मोती विवश था। रुपये कहाँ से आते? सब कुछ चला गया था, बच गई थी लाली! बम्बई के भाड़े के लिये वह भी निकल जायगी।

अत्याचार सहन करते-करते मोती कठोर हो गया था। वह खुद बिक जाता, मगर लाली को न बेचता; किन्तु मोती सबसे हाथ धो बैठा था। उसका दिल पत्थर हो गया था।

सोना का बाप एक दूसरे गाँव का चौकीदार

था। बस पाँच बीघा भूमि थी। सोना ने वहीं चल कर रहने को कहा था। उसके पिता ने भी इसपर जोर दिया। किन्तु ससुराल की रोटी तोड़नी मोती को पसन्द न थी। वह बड़ी आन का था।

सोना को पीहर पहुँचाकर मोती लौट आया। चलते समय सोना ने आँसू बहाते हुए कहा—"चिट्ठी भेजना और हो सके तो साल छः महीने में चले आना।"

"ईश्वर की जैसी इच्छा!"—कहकर मोती चला आया।

मोती के घर में भगवान तिवारी का बड़ा मान था। गाँव में वह बड़े सीधे, सरल ब्राह्मण थे। मोती की लाली उन्हें बड़ी पसन्द थी। मार्ग में जब कभी देखते तो उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए पुचकारते। मोती जानता था, लाली उनके यहाँ सुखी रहेगी। अतएव लाली को लेकर मोती उनके द्वार पर पहुँचा। प्रणाम किया।

उन्होंने पूछा—कहो मोती, कैसे चले?

"महाराज, सब कुछ चला गया, अब मैं भी बम्बई जा रहा हूँ"—मोती ने उत्तर दिया।

"क्या करोगे, दिन का फेर बड़ा विचित्र होता है। ज़मीदार बड़ा दुष्ट है। अन्धेर-नगरी है। कारिन्दा जो चाहता है, करता है। ज़मींदार को अपनी मौज से ही फुर्सत नहीं मिलती।"—कहकर तिवारी लाली की ओर देखने लगे।

"भाग्य में जो लिखा था, सो हुआ। अब आप लोगों का आशीर्वाद लेकर जाता हूँ। टिकट के रुपये नहीं हैं। लाली को लेकर आया हूँ, २०) रूपये की जरूरत है। लाली आपके यहाँ रहेगी।"—मोती ने बड़ी निराशा से कहा।

"तेरे ऊपर उसे तनिक भी दया न आई, उजाड़ कर ही छोड़ा! कब जाओगे?"—विचार करते हुए तिवारी ने कहा।

"आज ही!"

उन्होंने भीतर से २०) रुपये लाकर दिये। मोती रुपये लेकर लाली की तरफ देखने लगा। लाली भी

उसकी ओर देख रही थी। बड़ा करुण दृश्य था। मोती ने लाली के गले में हाथ डालकर उसे चूम लिया और चला गया।

कुछ दूर जाने पर बाँ .... आँ .....शब्द सुनाई पड़ा। मोती ने सोचा, लाली पुकार रही है, किन्तु हृदय पर हाथ रखकर यह कहते हुए चला गया—"लाली, तुम्हारे भाग्य से मैं पैसेवाला हो जाता तो......"

मोती बर्बाद हो गया, उजड़ गया।

(२)

मोती बम्बई पहुँच गया था। वह भौंचक्का होकर शहर देखने लगा। जैसे, किसी भूल-भुलैया में भटकने लगा। देहाती आदमी, किसी से परिचित न था। मोटर की भों-भों और घोड़ा-गाड़ी की हटो-बचो से घबड़ा उठा था। "कहाँ जाय? क्या करे? नौकरी कहाँ मिलेगी?" ये ही प्रश्न बार-बार उठते। कई दिन बीत गये। साहस नहीं होता था, बात कैसे करें?

सन्ध्या हो चली थी। मोती भूखा था। नौकरी की खोज में वह नगर से कुछ दूर चला आया था।

एक जगह खड़ा होकर देखने लगा। बड़ा भारी हाता था, उसी में गाय-भैंसें बँधी थीं। उसने अपने ही जैसे मैले वस्त्रों में कुछ काम करनेवालों को देखा। सलाम-बन्दगी हुई। परिचय हुआ। मोती ने अपना अभिप्राय प्रगट किया। उनके प्रति उन लोगों की सहानभूति हुई। उस दिन साहब से भेंट हुई, मोती को नौकरी मिली।

साहब की 'डेरी' थी। दूध का व्यवसाय होता था। मोती को दूध दूहने का काम मिला था। वह इस काम में निपुण भी था। साहब के सामने उसकी परीक्षा हुई थी।

दिन-पर-दिन बीतने लगा। वह बड़े परिश्रम से अपना कार्य्य करता। अपने नम्र व्यवहार के कारण सबसे हिल-मिल गया था। साहब उससे बड़े प्रसन्न रहते। उसका विश्वास जमता गया।

सोना का लिखवाया हुआ पत्र मिला था। मोती का हाल पूछा था, रुपये माँगे थे; और कब तक आवेगा, यह भी पूछा था।

मोती ने सोना को रुपये भेजे और उत्तर में लिखवाया—"मैं अब बड़े सुख से यहाँ हूँ। साहब के पास रुपया जमा कर रहा हूँ। दूध के व्यवसाय में यहाँ बड़ा लाभ है। मैं अच्छी तरह जान गया हूँ। कुछ दिन नौकरी करके रुपया जमा करूँगा। फिर खुद इसका कार-बार करूँगा। बड़ा लाभ होगा, तब तुम-को भी बुला लूँगा।"

(३)

दो वर्ष बीत गए।

दिल्ली से मोती ने गाय और भैंसें मँगवाईं। देखते-देखते उसका भाग्य चमका। सफलता से घनि-ष्ठता हो चली। दूध-मक्खन और घी बेचता। उसकी आँखें खुल गईं। दानों के लिये तरसनेवाला मोती अब पैसा जोड़ने लगा।

अपने एक सम्बन्धी के साथ सोना भी बम्बई चली आई। मोती को अब रोटी का कष्ट न होता। बड़े सुख से दोनों का समय बीतने लगा। मोती दिन-रात अपने काम में व्यस्त रहता; किन्तु सोना को

शहर का जीवन पसन्द न आया। रुपयों के लोभ से ही उसे सन्तुष्ट रहना पड़ता।

❀ ❀ ❀

दस वर्ष बीत गये।

साहब अपने देश चला गया। मोती ने उसकी डेरी खरीद ली थी। मोती बड़ा व्यवसायी हो गया था। वह अब मोती से मोतीलाल हो गया। लेकिन, बम्बई के जलवायु से वह बराबर अस्वस्थ रहता।

सोना ने एक दिन कहा—तुम दिन-पर-दिन दुबले होते जा रहे हो। अब यहाँ अच्छा भी नहीं लगता। ईश्वर ने बहुत धन दे दिया। चलो अब घर चलें; खेती करेंगे; यहाँ के इस जीवन से कोई सुख नहीं मालूम पड़ता।"

सोना की इस बात पर मोती कभी-कभी विचार करता।

उसके मन में भी बात जम गई। एक दिन उसने भी कहा—चलो, अब यहाँ नहीं रहूँगा। बहुत धन लेकर क्या करना है? सचमुच वे दिन कितने

अच्छे थे, जब दिन-भर खेत पर काम करके सन्ध्या समय अपनी झोपड़ी पर लौटते थे। वह तो अब सपना हो गया।

कुछ दिन के बाद मोती ने अपना कार-बार बन्द कर दिया। सेठ के हाथ सब कुछ बेचकर रुपये एकत्रित कर लिये।

सोना ने पूछा—कुल कितना है?

मोती ने कहा—एक लाख से कुछ अधिक।

सोना पुतली की तरह मोती की ओर देखने लगी।

उसी दिन दोनों चल पड़े।

(४)

बड़ी सरस सन्ध्या थी। एक युग के बाद मोती घर लौट आया था। उसके खँड़हर पर अब एक सुन्दर मकान बन रहा था। बड़ा परिवर्त्तन हो गया था। पैसे का प्रभाव था, गाँव के लोग मोती को घेरे बैठे थे। वह अपना वृत्तान्त सुना रहा था। उन्हीं लोगों की बात चीत से मोती को मालूम हुआ कि

ज़मींदार पतन के मार्ग की सीमा पर पहुँच गया है।

लाली को देखकर मोती दुखी हुआ। वह बूढ़ी हो गई थी। अब दूध नहीं देती थी। उसकी ठठरियाँ निकल आई थीं। मोती उसी दिन बूढ़े ब्राह्मण को रुपयों से प्रसन्न कर लाली को अपने यहाँ ले आया।

आज गाँव की नीलामी थी। ज़मींदार की छावनी पर डुग्गी बज रही थी। बड़े-बड़े महाजन एकत्र हुए थे। विलासिता के पर्दे में छिपा हुआ ज़मींदार अपना नग्न दृश्य देख रहा था।

मोती को भी समाचार मिला। वह बड़ा उदास था। नोट का बंडल बाँधकर वह निकला। सोना ने समझा, मोती नीलाम में गाँव खरीदेगा। गाँव के लोग भी उसका पहले से अनुमान कर रहे थे।

मोती नीलामी की बोली सुन रहा था। पूर्व काल के भयानक दिन उसकी आँखों के सामने फिर गये। उसका हृदय काँपने लगा। सामने ही ज़मींदार आँखें नीची किये बैठा था। मोती अपने को सँभाल न सका, उसने तत्काल ज़मींदार के चरणों पर नोटों का

बंडल रखते हुए कहा—मैं यह दुख भोग चुका हूँ। भगवान न करे किसी को यह दिन देखना पड़े। लीजिये, इससे अपना गाँव बचा लीजिये। इसी तरह मेरा दिन भी न बदलता। आपके कारण ही आज मैं रुपयों को जोड़ सका हूँ। अतएव यह आपका ही है।

ज़मींदार आश्चर्य से उसे देखने लगा।

चिड़ियावाला

"कोयल की बोली बोलो !"

"नहीं, पहले पपीहे की बोलो"

"नही, नहीं, भुजंगेवाली"

बालकों का एक झुण्ड चिड़ियावाले को घेरे था। उसका नाम कोई नहीं जानता था। जिस मार्ग से वह चला जाता, खेलते हुए बालक दौड़ पड़ते— चिड़ियावाला ! अरे, चिड़ियावाला !! वह देखो आ रहा है। चिड़ियावाला हँस पड़ता, बालकगण उसके साथ हो लेते।

"कोयल की बोली बोलो !"

"नहीं, पहले पपीहे की बोलो"

"नही, नहीं, भुजंगेवाली"

बालकों का एक झुण्ड चिड़ियावाले को घेरे था। उसका नाम कोई नहीं जानता था। जिस मार्ग से वह चला जाता, खेलते हुए बालक दौड़ पड़ते—चिड़ियावाला ! अरे, चिड़ियावाला !! वह देखो आ रहा है। चिड़ियावाला हँस पड़ता, बालकगण उसके साथ हो लेते।

भूली बात

वह तरह-तरह की चिड़ियों की बोली, बड़ी खूबी के साथ, बोलता था। इसीलिये, उसका नाम था—चिड़ियावाला ! बूढ़े कहते मैं अपनी जवानी से, स्त्रियाँ कहतीं मैं अपने विवाह के पश्चात् से, इस चिड़ियावाले को इसी तरह देखती हूँ। पड़ोस में कोलाहल मच जाता। सब उसके इस कौशल पर मुग्ध हो जाते।

उसकी गुदड़ी का चिथड़ा खींचते हुए एक नट-खट बालक ने कहा—"सब बोली तो बोल चुके! अब, गदहे की बोली बोलो, बस, फिर न कहेंगे।"

"चाम के झोपड़े में आग लगी है—बाबा ! वह कैसे बोलेगा ? माँजी से कुछ माँग लाओ, अब चलूँ।" कहते हुए चिड़ियावाला अपनी गुदड़ी समेटने लगा।

लड़के मार्ग रोककर खड़े हो गये। एक ने कहा—अच्छा, भूत की सूरत दिखलाकर, तब—चले जाओ।

चिड़ियावाले ने अपने हाथों से आँखों की पलकें उलट लीं, रुई की तरह सफेद बालों से मुँह ढक लिया

और दाँत निकालते हुए भयानक आकृति बनाकर कहा—हो-अ !

लड़के हँस उठे। खिड़की की चिक में से पैसे बरस पड़े। वह चलता बना। यही उसका व्यवसाय था, और यही—उस महास्मशान की भीषण ज्वाला को धधकाने के लिये—कमाई थी।

❀ ❀ ❀

नन्दन-बाबू की ज़मीन पर वह झोपड़ी बनाकर रहता था। झोपड़ी के सामने गेंदा और गुलमेंहदी समय-समय पर खिलती थी, जिसे देखकर वह प्रसन्न हो उठता था। उस पुराने पीपल के वृक्ष के नीचे उसकी झोपड़ी थी, सन्ध्या-समय जिसपर सैकड़ों पक्षी अपना बसेरा लेते थे।

नन्दन-बाबू ने अपने किसी लाभ की आशा से, उसे वहाँ से निकाल दिया था। उनका लड़का सुशील रोज उसे मन-ही-मन खोज लिया करता; मगर बाबूजी के डर से कुछ न कहता।

एक दिन घूमते-फिरते हुए चिड़ियावाला उसी झोपड़ी की ज़मीन को चुपचाप देख रहा था। सुशील ने आकर कहा—चिड़िया की कोई बोली बोलो।

चिड़ियावाले ने एक बार उसकी ओर देखा, फिर ज़मीन की ओर देखते हुए चल पड़ा।

उस दिन से वह चिड़ियावाला फिर वहाँ न दिखाई दिया।

(२)

समय के नन्दन-वन में कितने ही परिवर्त्तन हो गए।

उस दिन पक्षियों के मधुर कलरव से आकाश गूँज उठा। जाड़े का गुलाबी प्रभात था। कुएँ के सामने बरगद का एक वृक्ष था, थके हुए मुसाफिर का वहीं विश्राम-गृह था। एक उजड़ी हुई झोपड़ी थी। वहीं, थका-माँदा चिड़ियावाला अपनी गुदड़ी पर पड़ा था।

प्रकृति सन्नाटे का राग अलाप रही थी। एक भटका हुआ पक्षी, रात-भर बसेरा लेकर, उड़ा जा-

रहा था—बहुत दूर ! अपने भूले हुए पथ को खोज रहा था।

बड़ी करुण आह थी। एक दर्द-भरी तान थी किसी ने नहीं सुना। खून की एक उलटी हुई। कलेजा थामकर रह गया। किसी ने नहीं देखा। किरणें अपना जाल बना रही थीं। प्रलय का वह भीषण लाल खूनी अंगार, अपने विराट रूप की ओर संकेत कर रहा था। जीवन-कहानी एक पहेली बनकर स्वयं देख रही थी।

विधाता

"चीनी के खिलौने, पैसे में दो। खेल लो, खिला लो, टूट जाय तो खा लो—पैसे में दो," सुरीली आवाज़ में कहता हुआ खिलौनेवाला एक छोटी-सी घंटी बजा रहा था।

उसकी आवाज़ सुनते ही त्रिवेणी बोल उठी—

"माँ, पैसा दो, खिलौना लूँगी।"

"आज पैसा नहीं है, बेटी।"

"एक पैसा माँ, हाथ जोड़ती हूँ।"

"नहीं है त्रिवेणी, दूसरे दिन ले लेना।"

त्रिवेणी के मुख पर सन्तोष की झलक दिखलाई दी। उसने खिड़की से पुकारकर कहा—"ऐ खिलौने-वाले, आज पैसा नहीं है; कल आना।"

"चुप रह, ऐसी बातें भी कहीं कहनी होती हैं ?" उसकी माँ ने भुनभुनाते हुए कहा।

तीन वर्ष की त्रिवेणी के समझ में न आया। किन्तु उसकी माँ अपने जीवन के अभाव का पर्दा दुनिया के सामने खोलने से हिचकती थी। कारण, ऐसा सूखा विषय केवल लोगों के हँसने के लिए ही होता है।

और सचमुच—वह खिलौनेवाला मुस्कराता हुआ, अपनी घंटी बजाकर, चला गया।

× × ×

सन्ध्या हो चली थी।

लज्जावती रसोईघर में भोजन बना रही थी। दफ्तर से उसके पति के लौटने का समय था। आज घर में कोई तरकारी न थी, पैसे भी न थे। विजय-कृष्ण को सूखा भोजन ही मिलेगा। लज्जा रोटी बना

रही थी और त्रिवेणी अपने बाबूजी की प्रतीक्षा कर रही थी।

"माँ, बड़ी तेज भूख लगी है।" कातर वाणी में त्रिवेणी ने कहा।

"बाबूजी को आने दो, उन्हीं के साथ भोजन करना, अब आते ही होंगे।" लज्जा ने समझाते हुए कहा। कारण एक ही थाली में त्रिवेणी और विजयकृष्ण साथ बैठकर नित्य भोजन करते थे और उन लोगों के भोजन कर लेने पर उसी थाली में लज्जावती अपने टुकड़ों पर जीनेवाले पेट की ज्वाला को शान्त करती थी। जूठन ही उसका सोहाग था।

लज्जावती ने दीपक जलाया। त्रिवेणी ने आँख बन्द कर, दीपक को नमस्कार किया। क्योंकि उसकी माता ने प्रतिदिन उसे ऐसा करना सिखाया था।

द्वार पर खटका हुआ। विजय दिन-भर का थका लौटा था। त्रिवेणी ने उछलते हुए कहा—"माँ, बाबूजी आ गये।"

विजय कमरे के कोने से अपना पुराना छाता रखकर खूँटी पर कुर्ता और टोपी टाँग रहा था।

लज्जा ने पूछा—"महीने का वेतन आज मिला न?"

"नहीं मिला, कल बटेगा। साहब ने बिल पास कर दिया है।" हताश स्वर में विजयकृष्ण ने कहा।

लज्जावती चिन्तित भाव से थाली परोसने लगी। भोजन करते समय, सूखी रोटी और दाल की कटोरी की ओर देखकर विजय न-जाने क्या सोच रहा था। सोचने दो क्योंकि चिन्ता ही दरिद्रों का जीवन है और आशा उनका प्राण।

× × ×

दिन कट रहे थे।

रात्रि का समय था। त्रिवेणी सो गई थी, लज्जा बैठी थी।

"देखता हूँ इस नौकरी का भी कोई ठिकाना नहीं है।" गम्भीर आकृति बनाते हुए विजयकृष्ण ने कहा।

"क्यों! क्या कोई नई बात है?" लज्जावती ने

अपनी झुकी हुई आँखें ऊपर उठाकर, एक बार विजय की ओर देखते हुए पूछा।

"बड़ा साहब, मुझसे अप्रसन्न रहता है। मेरे प्रति उसकी आँखें सदैव चढ़ी रहती हैं।"

"किस लिए ?"

"हो सकता है, मेरी निरीहता ही उसका कारण हो।"

लज्जा चुप थी।

"पन्द्रह रुपये मासिक पर दिन-भर परिश्रम करना पड़ता है। इतने पर भी..........."

"ओह, बड़ा भयानक समय आ गया है !" लज्जा-वती ने दुःख की एक लम्बी साँस फेंकते हुए कहा।

"मकानवाले का दो मास का किराया बाकी है, इस बार वह नहीं मानेगा।"

"इस बार न मिलने से वह बड़ी आफत मचा-येगा।" लज्जा ने भयभीत होकर कहा।

"क्या करूँ ? जान देकर भी इस जीवन से छुट-कारा होता........।"

"ऐसा सोचना व्यर्थ है। घबड़ाने से क्या लाभ? कभी दिन फिरेंगे ही।"

"कल रविवार है, छुट्टी का दिन है, एक जगह दूकान पर चिट्ठी-पत्री लिखने का काम है। पाँच रुपये महीना देने को कहता था। घण्टे-दो-घण्टे उसका काम करना पड़ेगा। मैं आठ माँगता था। अब सोचता हूँ कल उससे मिलकर स्वीकार कर लूँ। दफ्तर से लौटने पर उसके यहाँ जाया करूँगा," कहते हुए विजयकृष्ण के हृदय में उत्साह की एक हल्की रेखा दौड़ पड़ी।

"जैसा ठीक समझो।" कहकर लज्जा विचार में पड़ गई। वह जानती थी कि विजय का स्वास्थ्य परिश्रम करने से दिन-पर-दिन खराब होता जा रहा है।

मगर रोटी का प्रश्न था!

× × ×

दिन, सप्ताह और महीने उलझते चले गये।

विजय प्रतिदिन दफ्तर जाता। वह किसी से बहुत कम बोलता। उसकी इस नीरसता पर प्रायः दफ्तर के और कर्मचारी उससे व्यंग करते।

उसका पीला चेहरा और धँसी हुई आँखें लोगों को हास्य करने के लिए उत्साहित करती थीं। लेकिन वह चुप-चाप ऐसी बातों को अनसुनी कर जाता। कभी उत्तर न देता। इसपर भी सब उससे असन्तुष्ट रहते थे।

विजय के जोवन में आज एक अनहोनी घटना हुई। उसे कुछ समझ न पड़ा। मार्ग में उसके पैर आगे न बढ़ते। उसकी आँखों के सामने चिनगारियाँ झलमलाने लगीं। मुझसे क्या अपराध हुआ? कई बार उसने मन में प्रश्न किये।

घर से दफ्तर जाते समय बिल्ली ने रास्ता काटा था। आगे चलकर खाली घड़ा दिखलाई पड़ा था। इसीलिए तो सब अपशकुनों ने मिलकर आज उसके भाग्य का फैसला कर दिया था।

"साहब बड़ा अत्याचारी है। क्या ग़रीबों का पेट काटने के लिए ही पूँजीपतियों का आविष्कार हुआ है? नाश हो इनका...वह कौन-सा...दिन होगा जब रुपयों का अस्तित्व संसार से मिट जायगा?

भूखा मनुष्य दूसरे के सामने हाथ न फैला सकेगा ?"

सोचते हुए विजय का माथा घूमने लगा। वह मार्ग में गिरते-गिरते सम्हल गया।

सहसा उसने आँखें उठाकर देखा, वह अपने घर के सामने आ गया था, बड़ी कठिनाई से वह घर में घुसा। कमरे में आकर धम से बैठ गया।

लज्जावती ने घबड़ाकर पूछा—"तबीयत कैसी है ?"

"जो कहा था, वही हुआ।"

"क्या हुआ ?"

"नौकरी छूट गई। साहब ने जवाब दे दिया।" कहते-कहते उसकी आँखें छलछला गईं।

विजय की दशा पर लज्जा को रुलाई आ गई। उसकी आँखें बरस पड़ीं। उन दोनों को रोते देखकर त्रिवेणी भी सिसकने लगी।

संध्या की मलीन छाया में तीनों बैठकर रोते थे। इसके बाद शान्त होकर विजय ने अपनी आँखें पोंछीं; लज्जावती ने अपने और त्रिवेणी की।—

विधाता

क्योंकि संसार में एक और बड़ी शक्ति है, जो इन सब शासन करनेवाली चीजों से कहीं ऊँची है। जिसके भरोसे बैठा हुआ मनुष्य, आँख फाड़कर अपनी भाग्य की रेखा को देखा करता है।

छलिया
छलिया

बहन मालती,

बहुत-सा प्यार ! तुम बड़ी निष्ठुर हो। तुमने सौगंध लेकर कहा था कि मैं पहले पत्र लिखूँगी, पर राह देखते-देखते आँखें पथरा गईं। तुम्हारे हाथ सुकुमार हैं, अवश्य कलम उठाने में दुःख जायँगे, इसका मुझे पता न था। मैं तो घबरा गई।

तुमने कहा था कि मैं पत्र लिखने में स्वतंत्र हूँ; पर तुम तो—मालूम पड़ता है—मुझसे भी अधिक

अपनी सीमा के भीतर रहनेवाली हो। बहन, पसीजो! पत्र तो लिखो। उस दिन मेले से लौटकर आने पर, तुम्हारी बड़ी-बड़ी आँखें आँखों में घुस गई हैं। सच-मुच तुम्हारे वह तो तुम्हें छोड़ते न होंगे। तुम बड़ी भाग्यवती हो। मुझे भी तो वही प्रयोग बतलाने को तुमने कहा था। लिखो न! क्या उपाय है? मैं ऊब गई हूँ। मुझसे तो यह तीव्र उपेक्षा अब सही नहीं जाती।

क्या आँसू पीकर बराबर हँसते रहना हमारे भाग्य में है? तुम बड़ी हँसोड़ हो, यह तो मैं जान चुकी हूँ। बतलाओगी? उसका क्या मूल्य है? बहन, उन दिनों की स्मृति कब तक धीरज देगी? मैं कभी-कभी घबड़ाकर उन्हीं से पूछती हूँ कि "मेरा वह सब क्या हुआ?" वह, मेरे आराध्य! निश्चल प्रतिमा की तरह उत्तर दे देते हैं।

तुमने उन्हें उस दिन देखा था। यह ठीक है कि जब वे पास आ गए, तो तुमने घूँघट काढ़ लिया, पर देखा होगा अवश्य! वह मेरे हैं, केवल इस मौखिक गर्व से असंतुष्ट हृदय कब तक भुलवाया जा सकता

है ? कोई उपाय बताओगी ? तुम्हें सौगंध है—लिखो। मैंने तुम्हें अपना पता लिखा दिया था। आशा है, तुम भूली न होगी।

तुम्हारी—

चंपा

× × ×

चंपा का पत्र पढ़कर मालती मुसकिराने लगी। एक बार उसने सोचा, यह बला कहाँ से पीछे लगी। फिर उसके चंचल चित्त ने कहा—क्या हर्ज है ? जैसे श्यामलाल को बुद्धू बनाना चाहती हूँ, उसी तरह चंपा को भी छका सकती ! कैसी अच्छी दिल्लगी रहेगी। उसने बनावटी सहानुभूति और गंभीरता के साथ उत्तर लिखा—

मेरी प्यारी चंपा,

गले से मिलना ! आज अनायास तुम्हारा पत्र मिल गया। पहले कई दिनों तक तुम मेरी आँखों पर चढ़ी थीं ; मगर सदैव कौन किसको याद करता है ? मैंने समझा, वह एक मनोविनोद था। शायद तुम

भूली बात

भूल जाओ, लेकिन नहीं, बात वैसी नहीं मालूम पड़ती। तुम्हारे पत्र ने जैसे प्रत्यक्ष में बातें कीं। तुम्हारी दशा पर तरस आता है—बहन! क्या करोगी? भाग्य में जो लिखा होता है, वह तो होगा ही।

मेरे वह तो मेरे संकेत पर चलते हैं। उनके लिये कभी दुःख और चिंता करनेवाली बातें मेरे मन में उठी ही नहीं। फिर भी तुम्हारे दुःख की कल्पना कर सकती हूँ। यह एक बड़ी विचित्र बात है!

एक बात है! तुम्हारे पत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि तुम्हारे वह दिन-पर-दिन तुम्हारे प्रति नीरस होते जा रहे हैं। मैं समझती हूँ, इसका मुख्य कारण यही है कि जरूरत से ज्यादा तुम नम्र हो जाती हो। यदि कुछ वह खिंचें, तो कुछ तुम भी खिंचो। स्त्रियों पर आधिपत्य जमाकर अपराधी मनुष्य शासन की लालसा में अपने को कैसा भाग्यशाली समझने लगता है? हो सके, तो उत्तर देना।

तुम्हारी—

मालती

पत्र लिखकर मालती बार-बार उसे पढ़ने लगी। उसे अपने काल्पनिक पति की प्रशंसा करने में बड़ा मज़ा आया, वह हँस पड़ी।

× × ×

मालती का पत्र पढ़कर चंपा कई दिनों तक विचार में पड़ी थी। अंत में उसने उत्तर लिखा—

मेरी भाग्यवती बहन,

तुम्हारे उस सुहाग की साड़ी के आँचल का चुंबन! तुम्हारा पत्र पढ़कर मेरा हृदय तो उतावला-सा हो गया है। तुम्हारे भाग्य से ईर्षा होती है! तुम्हारी बातें मेरे लिये बड़ी कठिन हैं। भला उनसे खिंचने से कै दिन चल सकेगा? अभी तो भूले-भटके कभी वह बात भी कर लेते हैं। नहीं तो, वह घर का आना भी एकदम छोड़ देंगे। तुम्हीं कहो, उनसे लड़ाई करके ईश्वर भी मेरा सहायक न होगा। मेरे तो वही धर्म हैं, वही ईश्वर हैं और वही पार लगानेवाले हैं। राम-राम! ऐसी बातें भूलकर भी नहीं सोचना चाहती। हृदय काँप उठता है!

सुना है, वह एक दूसरी स्त्री पर रीझे हैं, एक वेश्या के यहाँ जाते हैं! हो सकता है। उनके लिये बहुत हैं ; मगर मेरे लिये वह एक ही हैं। इसी-लिये, तीर की तरह यह बात दिल में चुभी है। मेरा क्या वश है। मैं क्या कर सकती हूँ ? न-जाने कौन-सा अपराध हो गया है ? उनकी आँखों में अपने प्रति नफ़रत देखकर डूब मरने की इच्छा होती है।

एक दिन था, जब मैं अपने से बढ़कर भाग्यवती दुनिया में किसी को न समझती थी, फूली न समाती थी। वे दिन हँसते-हँसते कट जाते थे। जीवन में कितना उत्साह था। उनकी एक प्रेमभरी दृष्टि पर मैं मर-मिटने को तैयार थी। लेकिन, आज मुझसे बढ़-कर दुखिया कौन होगा ?

देखती हूँ, मनुष्य का स्वभाव रंगीन बादलों की तरह क्षण-भर में ही बदल जाता है। जिसको एक दिन वह दोनों हाथों को फैलाकर गले से लगाता है, उसी को क्रोध की लाल-लाल आँखें चढ़ाकर पैरों ठुकरा भी सकता । किसी के मन की वात कौन समझ सकता है ?

ओह ! उनका दिल मुझसे फट गया है, अकेले कमरे में बैठे न-जाने क्या सोचा करते हैं। मुझे देखते ही उनकी आँखें चढ़ जाती हैं। बोलो, ऐसी स्थिति में मेरे जीने से क्या लाभ ?

उस दिन तुम्हारा पत्र डाकिया से लेकर जब नन्ही आई, तो पूछने लगे, किसका पत्र है ? तुम्हारी बात मैं छिपा गई। मैंने कहा—"मेरी बहन का है।" फिर उन्होंने कुछ न पूछा। मैं समझती हूँ कि इसमें मैं उनसे झूठ नहीं बोली, क्योंकि तुम भी तो मेरी बहन हो !

अब मैं क्या करूँ ? कोई उपाय यदि बता सकतीं, तो जीवन-भर तुम्हारी ऋणी रहती, तुम्हारे नाम की माला जपती। मेरी दशा पर विचार करो और लिखो कि मेरी सुख की फुलवारी क्या फिर से हरी-भरी हो सकती है ? या जीवन से निराश हो जाऊँ ? बस।

तुम्हारी अभागी—

चंपा

× × ×

आरंभ में मालती ने इसे खिलवाड़ समझा था; किन्तु अब वह चंपा के मानसिक कष्ट का धीरे-धीरे अनुभव करने लगी। उसे ऐसा मालूम पड़ता, जैसे वह घोर अनर्थ कर रही है। इस बार फिर उसने उत्तर लिखा—

बहन चंपा,

तुम्हारा पत्र मिला था। कई दिनों तक तुम्हारी स्थिति पर विचार करती रही। कुछ समझ नहीं पड़ता। मनुष्य इतनी जल्दी बदल जाता है, आश्चर्य है!

सुना है, पुरुष बड़े स्वार्थी होते हैं। मतलब के समय नम्र हो जाते हैं, बड़े सीधे-सादे बन जाते हैं मगर भीतर से होते हैं बड़े चालाक! पहले तो ये; दिन और रात एक कर देते हैं। सदैव एक ही बात! "मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ", यही उनका पेटेंट नुस्ख़ा होता है। अरे, तुम्हें नहीं मालूम, जिस तरह नित्य एक ही तरह की तरकारी, दाल, मिठाई खाते-खाते तबीयत ऊब जाती है, उसी तरह इनको भी

ज़ायक़ा बदलने की आवश्यकता पड़ती है। मेरा ऐसा अनुमान है कि तुम्हारे वह आज-कल ज़ायक़ा बदलने के फेर में पड़े हैं।

वेश्या किसी की होती नहीं। उन्हें तो रुपयों से काम है। उनके यहाँ जाकर मनुष्य बर्बाद भी हो सकता है और कुछ सीख भी सकता है। जो उस भूल-भुलैया से निकल आता है, वह संसार में चतुर समझा जाता है। जीवन-भर फिर वह किसी के हाथों पर नहीं चढ़ता। ऐसा मैंने किसी पुस्तक में पढ़ा है। हो सकता है, तुम्हारे वह भी वहाँ से छुटकारा पाने पर सदैव के लिये तुम्हें सुखी बना सकें।

मुझसे पूर्ण-रूप से परिचित न होते हुए, केवल एक दिन की भेंट में तुम मुझे अपना समझती हो। तुम्हारी इस सरलता पर मैं मुग्ध हूँ। मैं भी तुम्हें सुखी देखना चाहती हूँ; किंतु तुम अपने भाग्य की उलझी ग्रंथि को सुलझाने में अपने को असमर्थ समझती हो।

मैं अब तुम्हारा शहर छोड़ रही हूँ। बहुत शीघ्र यहाँ से चली जाऊँगी। सब तरह से सुखी होते

आरंभ में मालती ने इसे खिलवाड़ समझा था; किन्तु अब वह चंपा के मानसिक कष्ट का धीरे-धीरे अनुभव करने लगी। उसे ऐसा मालूम पड़ता, जैसे वह घोर अनर्थ कर रही है। इस बार फिर उसने उत्तर लिखा—

बहन चंपा,

तुम्हारा पत्र मिला था। कई दिनों तक तुम्हारी स्थिति पर विचार करती रही। कुछ समझ नहीं पड़ता। मनुष्य इतनी जल्दी बदल जाता है, आश्चर्य है!

सुना है, पुरुष बड़े स्वार्थी होते हैं। मतलब के समय नम्र हो जाते हैं, बड़े सीधे-सादे बन जाते हैं मगर भीतर से होते हैं बड़े चालाक! पहले तो ये; दिन और रात एक कर देते हैं। सदैव एक ही बात! "मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ", यही उनका पेटेंट नुस्खा होता है। अरे, तुम्हें नहीं मालूम, जिस तरह नित्य एक ही तरह की तरकारी, दाल, मिठाई खाते-खाते तबीयत ऊब जाती है, उसी तरह इनको भी

ज़ायक़ा बदलने की आवश्यकता पड़ती है। मेरा ऐसा अनुमान है कि तुम्हारे वह आज-कल ज़ायक़ा बदलने के फेर में पड़े हैं।

वेश्या किसी की होती नहीं। उन्हें तो रुपयों से काम है। उनके यहाँ जाकर मनुष्य बर्बाद भी हो सकता है और कुछ सीख भी सकता है। जो उस भूल-भुलैया से निकल आता है, वह संसार में चतुर समझा जाता है। जीवन-भर फिर वह किसी के हाथों पर नहीं चढ़ता। ऐसा मैंने किसी पुस्तक में पढ़ा है। हो सकता है, तुम्हारे वह भी वहाँ से छुटकारा पाने पर सदैव के लिये तुम्हें सुखी बना सकें।

मुझसे पूर्ण-रूप से परिचित न होते हुए, केवल एक दिन की भेंट में तुम मुझे अपना समझती हो। तुम्हारी इस सरलता पर मैं मुग्ध हूँ। मैं भी तुम्हें सुखी देखना चाहती हूँ; किंतु तुम अपने भाग्य की उलझी ग्रंथि को सुलझाने में अपने को असमर्थ समझती हो।

मैं अब तुम्हारा शहर छोड़ रही हूँ। बहुत शीघ्र यहाँ से चली जाऊँगी। सब तरह से सुखी होते

हुए भी, मन उदास रहता है। सोचती हूँ, उनसे लड़ाई करके कहीं भाग जाऊँगी। मैं स्वतंत्र हूँ, मेरे हृदय पर किसी का अधिकार नहीं। मैं एक पहेली हूँ। बूझ सकोगी? अच्छा, जाने के पहले एक दिन तुमसे भेंट करूँगी। अब पत्र मत लिखना।

तुम्हारी—

मालती

× × ×

कई दिन समाप्त हुए।

चंपा मालती के इस रहस्य-पूर्ण पत्र को न समझ सकी। मालती कौन है? यह वह भली-भाँति न जानती थी। बग़ीचे में भेंट हुई थी। बड़ी मिलन-सार थी। बातें हुईं। एक दिन का परिचय था। मालूम पड़ता, वह वर्षों की परिचित है। चंपा सोचने लगी, वह शहर छोड़कर कहाँ जायगी? क्या वह अपने पति का साथ छोड़ देगी? उसने तो लिखा था कि मेरे वह मेरे संकेत पर चलते हैं, फिर इतनी उदासी क्यों?

इधर कई दिनों से श्यामलाल को भी चिंतित देखकर चंपा कुछ समझ न पाती। भोजन के समय श्यामलाल की भरभराई आँखें किसी भारी अभाव की सूचना दे रही थीं।

घड़ी में आठ बजा था। बड़ी कड़ाके की धूप निकली थी। श्यामलाल कपड़ा पहन रहे थे। चंपा उनके सामने खड़ी थी। उसने पूछा—"आज इतनी जल्दी कहाँ जा रहे हैं? भोजन कर लीजिए, तब जाइएगा।"

"मेरे एक मित्र परदेस जा रहे हैं। उन्हें स्टेशन तक पहुँचाना है।" कहते हुए श्यामलाल कुर्ते का बटन लगा रहे थे।

ठीक उसी समय द्वार पर गाड़ी के रुकने की खड़खड़ाहट हुई। चंपा अपने पति के कमरे से हटना चाहती थी। उसने समझा, उनके कोई मित्र आए हैं। श्यामलाल भी ध्यान से द्वार की ओर देखने लगे।

यह क्या? यह तो स्त्री है! कौन है—मालती? चंपा ने पहचान लिया। वह वहीं खड़ी हो गई।

श्यामलाल थरथर काँप रहे थे। मालती आगे बढ़ी। चंपा ने बड़े कौतूहल से दोनों हाथ फैलाकर उसका स्वागत किया। मालती, श्याम-लाल की ओर देखती हुई, उनके कमरे की ओर बढ़ी।

चंपा ने कहा—"उधर कहाँ ? चलो घर में।"

"नहीं, उन्हीं के यहाँ, तुम भी साथ आओ।" बड़े साहस से मालती ने कहा।

चंपा बड़े आश्चर्य से उसके साथ कमरे में गई। आज मालती ने श्यामलाल को देखकर घूँघट नहीं काढ़ा था।

श्यामलाल का चेहरा अपराधी की तरह पीला पड़ गया था। वह चुपचाप देखने लगे।

श्यामलाल से आँखें मिलाकर, मालती ने मुस-किराते हुए कहा—"बड़ी देर कर दी ! मैं प्रतीक्षा में थी। इसीलिये स्वयं चली आई।"

श्यामलाल एक शब्द भी न बोल सके। वह चंपा की ओर देखने लगे।

मालती ने कुछ आभूषणों को देते हुए चंपा से कहा—"लो, इसे सहेज लो, इतनी बहुमूल्य चीज़ मेरे भाग्य में नहीं है। यह सब तुम्हारा है।"

"मेरा!—नहीं, तुम यह क्या कह रही हो मालती बहन ? पागल तो नहीं हो गई हो ?"
चंपा ने पूछा।

"मैंने तुम्हें लिखा कि मैं एक पहेली हूँ, तुम्हें नहीं मालूम, मैं वही वेश्या हूँ, जिस पर तुम्हारे पति रीझे हैं। मैं अब परदेस जा रही हूँ बहन ! मुझे क्षमा करो।" मालती ने बड़ी नम्रता से कहा।

चंपा एक बार मालती और श्यामलाल की ओर देखने लगी।

श्यामलाल ने घबराकर कहा—"ओह ! मैं नहीं जानता था।..... तुम बड़ी विचित्र हो।"

"बहन, अब तुम सुखी रहोगी। अंतिम बार तुमसे मिलने आई थी। आज ही जा रही हूँ, इसी दस बजे की गाड़ी से।" कहते हुए मालती जाने लगी।

भूली बात

चंपा की आँखों में लाली दौड़ रही थी। उसने तीखे स्वर में कहा—"तुम बड़ी छलिया हो!"

मालती चली गई थी। श्यामलाल ने कपड़े उतार दिए, वह मालती को स्टेशन तक पहुँचाने नहीं गए।